पतंजलि विश्वविद्यालय की प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

परप्रणव-विरचिता

चिवधू-गल-रत्नमाला

(हिन्दी-भाषान्तर सहित)

अरुचि-नाशक, स्वास्थ्यवर्द्धक, स्वादिष्ठ व्यञ्जनों का वर्णन करने वाली
आयुर्वेद व पाकशास्त्र से सम्बद्ध प्राचीन संस्कृत-रचना

परप्रणव-विरचिता

रुचिवधू-गल-रत्नमाला

अरुचि-नाशक, स्वास्थ्यवर्द्धक, स्वादिष्ठ व्यञ्जनों का वर्णन करने वाली आयुर्वेद व पाकशास्त्र से सम्बद्ध प्राचीन संस्कृत-रचना

सम्पादन, हिन्दीभाषान्तर

आचार्य बालकृष्ण

दिव्य प्रकाशन

दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट, पतंजलि योगपीठ हरिद्वार

प्रकाशक दिव्य प्रकाशन,
पतंजलि योगपीठ
महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग,
निकट- बहादराबाद, हरिद्वार- 249402 (उत्तराखण्ड)

आईएसबीएन 81-89235-94-X

ई-मेल divyayoga@rediffmail.com

वेबसाइट www.divyayoga.com

दूरभाष (01334) 244107, 240008, 246737

फैक्स (01334) 244805

मूल्य रु. 110/-

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित किसी भी प्रयोग को विशेषज्ञ वैद्य के परामर्श के बिना विधिविरुद्ध रूप में प्रयोग में लाने से होने वाली किसी भी तरह की हानि के लिए प्रयोगकर्ता स्वयं जिम्मेदार होगा।

प्रथम संस्करण 5 जनवरी 2014 ई. (पौष शुदि चतुर्थी, सं. २०७० वि.)
(5000 प्रतियाँ)

मुद्रक mpprinters
[A unit of D.B. Corp. Ltd.]
B-220, Phase-II, Noida
201305, (U.P.)

रुचिवधू-गल-रत्नमाला

विषय-सूची

परिशिष्ट भाग

आयुर्वेद के उपदेष्टा शल्यतन्त्र के प्रवर्तक धन्वन्तरि
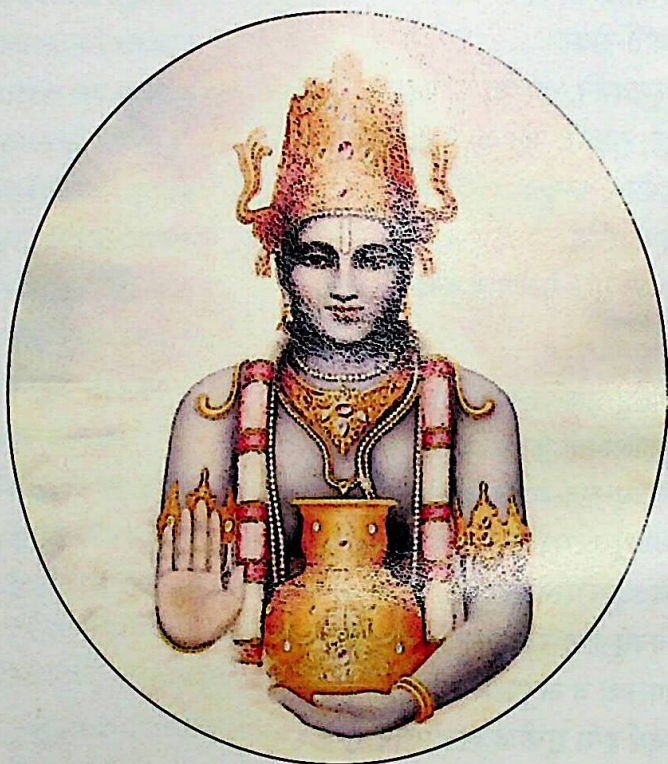
ब्रह्मचर्य-निवातशयनोष्णोदकस्नान-निशास्वप्न-
व्यायामाश्चैकान्ततः पथ्यतमाः

(सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान-२०.६)

ब्रह्मचर्य, निवातशयन (ऐसे स्थान पर सोना जहाँ सीधी वायु न लगे), उष्णजल से स्नान, रात्रि में शयन एवं व्यायाम करना; ये कार्य स्वास्थ्यलाभ हेतु प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यन्त हितकर होते हैं।

भूमिका

प्राचीनकाल से भारत वर्ष में पाकशास्त्रीय ग्रन्थ-रचना की परम्परा रही है। इन ग्रन्थों में पाकविधि के साथ भोज्य वस्तुओं के गुण-धर्म, प्रभाव व रोगविशेष में उनकी उपादेयता का वर्णन भी मिलता है। इस प्रकार पाकशास्त्रीय ग्रन्थों में आयुर्वेदीय निर्देश भी रहते हैं। अतः प्राचीन पाकशास्त्रीय ग्रन्थ आयुर्वेद से घनिष्ठतया सम्बद्ध हैं। इनमें जहाँ उत्तमोत्तम स्वादिष्ठ व्यञ्जनों के बनाने की विधियाँ प्रस्तुत की हैं, वहीं स्वास्थ्य के लिए उनकी उपयोगिता का भी वर्णन किया है। रोगविशेष के निवारण के लिए पथ्य रूप में विशिष्ट प्रकार के कृतान्न (ओदन, सूप, शाक इत्यादि पके भोजन) का विवेचन भी इन ग्रन्थों में मिलता है।

पाकशास्त्र के ग्रन्थों में राजा नल व पाण्डुपुत्र भीम द्वारा रचित पाकशास्त्र का उल्लेख प्राचीन साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है। अनेक प्राचीन रचनाकारों ने **गौ रीमत** व **नलमत** नामक पाकशास्त्रीय ग्रन्थों का उल्लेख भी किया है। भोज-रचित पाकशास्त्रीय ग्रन्थ की चर्चा भी अनेक ग्रन्थों में मिलती है।

अजीर्णामृत-मञ्जरी की संस्कृत टीका में **भीम-भोजनम्** नामक एक पाकशास्त्रीय ग्रन्थ के उद्धरण मिलते हैं। भारत के कुछ हस्तलेखागारों में भीमसेन-विरचित **सूपशास्त्रम्**[१] भी उपलब्ध है। वर्त्तमान में कुछ पाकशास्त्रीय ग्रन्थ प्रकाशित रूप में भी सुलभ हैं, यथा- **पाकदर्पण**[१], जो राजा नल द्वारा रचित माना जाता है। १६वीं शती ई. में क्षेमशर्मा द्वारा रचित **क्षेमकुतूहल**[२]

---

१. प्राच्यविद्या संशोधनालय मैसूर (कर्नाटक) में हस्तलिखित **सूपशास्त्रम्** (भीमसेन-विरचित) उपलब्ध है।

१. **पाकदर्पण** (नल-विरचित) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी- २२१००१.

२. **क्षेमकुतूहल**- निर्णयसागर मुद्रणालय, मुम्बई, १९२० ई.

नामक ग्रन्थ एक चर्चित पाकशास्त्रीय रचना है। १७वीं शती ई. में कोंकण (महाराष्ट्र) वासी पण्डित रघुनाथ सूरि द्वारा विरचित भोजन-कुतूहल नामक ग्रन्थ भी आयुर्वेद व पाकशास्त्र की मिली-जुली रचना है।

पाकविद्या के इन्हीं ग्रन्थों की परम्परा में रुचिवधू-गल-रत्नमाला नामक प्रस्तुत रचना आती है। हस्तलिखित प्रतिलिपि के अन्त में रचना-काल का उल्लेख नहीं है। अत: इसकी जानकारी के लिए अन्य प्रमाण जुटाने आवश्यक हैं। 'क्षेमकुतूहल' के आरम्भ में रचयिता ने 'गौरीमत' व भीमरचित पाकग्रन्थ जैसी कुछ रचनाओं को उपजीव्य बताया है। ऐसा ही उल्लेख प्रस्तुत पुस्तिका के आरम्भ में भी मिलता है। क्षेमकुतूहल में अनेक पूर्ववर्ती ग्रन्थों से साम्रगी ली है। इसी प्रकार पूववर्ती ग्रन्थों का आश्रय लेने की बात प्रस्तुत रचना के आरम्भ में भी कही गई है। रुचिवधू-गल-रत्नमाला के ८० से अधिक श्लोक क्षेमकुतूहल में भी उपलब्ध हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये पद्य पुरानी रचनाओं से क्षेमकुतूहलकार ने उद्धृत किए थे तथा उन्हीं रचनाओं से अथवा क्षेमकुतूहल से इस पुस्तिका में लिए हैं। इससे प्रस्तुत रचना का काल क्षेमकुतूहल से परवर्ती प्रतीत होता है। इस विषय में अधिक जानकारी के लिए गवेषणा अपेक्षित है।

इसके रचियता **परप्रणव** नामक एक शैव (शिवभक्त) आचार्य थे, इन्हीं का दूसरा नाम **परोङ्कार** था। ये शैव परम्परा में प्रसिद्ध लकुलीश सम्प्रदाय के पदासीन आचार्य के अनुज (छोटे भाई) थे। यह जानकारी ग्रन्थकार ने स्वयं ग्रन्थान्त में निम्न श्लोक द्वारा प्रस्तुत की है-

इति परलकुलीशाचार्यवर्यानुजेन
द्विपभिदनुचरेण श्रीपरोङ्कारनाम्ना ।
व्यरचि रुचि-चिरण्टी-कण्ठरत्नावलीयं
श्रवणपठनमात्रादङ्गिनां रोचकाय ।। (रुचिवधू-गल०- १३६)

इसके अतिरिक्त इनके काल व निवास-स्थान आदि के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं हुई है। इस विषय में भी अनुसन्धान अपेक्षित है। रचयिता के शैव होने का प्रभाव प्रस्तुत रचना में पद-पद पर परिलक्षित होता है। पद्यों में बारम्बार श्रद्धापूर्वक शिवभक्ति का पुट दिया गया है। मंगलाचरण में भी ग्रन्थकार इष्टदेवता के रूप में भगवती पार्वती का स्मरण करते हुए उन्हें ही पाकविद्या की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रस्तुत करते हैं-

यस्याः कराम्बुजवशादमृती भवन्ति
पर्णतृणान्यपि कटाक्षनिरीक्षणाच्च ।
निःस्वा अपि त्रिदशपादपतां लभन्ते
सा पार्वती जयति पाकविवेकभूमिः ।। (रुचिवधू-गल०- १)

अर्थात् जिसके करकमलों के स्पर्श से पर्ण (पत्ते) व तृण (घास) आदि नीरस वस्तुएं भी अमृतरूप बन जाती हैं तथा जिसके कटाक्ष-निरीक्षण (कृपापूर्ण दृष्टिपात) से निर्धन जन भी कल्पवृक्ष रूप बन जाते हैं, वह पाकविद्या-निधानभूता भगवती अन्नपूर्णा देवी पार्वती विजयी हो रही हैं, अर्थात् संसार में सर्वोत्कृष्टतया विराजमान हैं । इस प्रकार ग्रन्थकार उच्चकोटि के शिवभक्त शैव आचार्य हैं। इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ में निरामिष (शाकाहारी) व्यञ्जनों का ही वर्णन किया है। किसी व्यञ्जन में पलाण्डु (प्याज) तथा रसोन (लहसुन) का प्रयोग भी निर्दिष्ट नहीं है।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय-

जैसा कि प्रस्तुत रचना के नाम- रुचिवधू-गल-रत्नमाला से सूचित होता है कि इस पुस्तिका में रचयिता ने भोजन में रुचि जागृत करने वाले तथा क्षुधा को बढ़ाने वाले नानाविध सुरुचिपूर्ण व स्वादु व्यञ्जनों का वर्णन किया है। उक्त नामकरण इसी भाव को स्पष्टतया संकेतित करता है। पुस्तक के इस नाम का अर्थ इस प्रकार है- रुचि रूपी वधू अर्थात् दुल्हन के गले की

रत्नमाला। यहाँ रुचि से तात्पर्य भोजन-रुचि है। कवि द्वारा इस रुचि को ही वधू के रूप में चित्रित किया है तथा इसे उल्लासित करने के लिए यहाँ व्यञ्जन-वर्णना रूपी गलरत्नमाला गुम्फित की गई है।

इस प्रकार प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप पुस्तक का नाम सर्वथा सटीक व रोचक रूप में रखा है। इस नाम से काव्यात्मकता स्पष्टतया झलकती है। वस्तुत: रचयिता बहुत ही सहृदय कवि हैं। पुस्तकगत उत्तम पद्यरचना से उनके काव्यरचना-कौशल का आभास सहज ही हो जाता है। यह दक्षिण भारत की रचना है। अत: व्यञ्जनों में दक्षिण-भारतीय शैली का पुट दिखाई देता है। यद्यपि इसमें वर्णित अधिकांश व्यञ्जन सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हैं; परन्तु कुछ व्यञ्जन ऐसे हैं, जिनका चलन मुख्य रूप से दक्षिण-भारत में ही है।

छन्दोयोजना-

प्रस्तुत रचना पद्यबद्ध है तथा काव्यात्मक सौन्दर्य से समलंकृत है। इसमें अनेक मधुर गेय (गाने योग्य) छन्दों का प्रयोग करते हुए सुन्दर सुललित कविता में वर्ण्य विषय प्रस्तुत किया गया है। प्रयुक्त छन्दों में-अनुष्टुप्, आर्या, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, तोटक, पुष्पिताग्रा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, रथोद्धता, वसन्ततिलका, वियोगिनी, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, स्रग्धरा एवं स्वागता हैं।

इस प्रकार १३६ श्लोकों वाली इस लघु रचना में ग्रन्थकार ने ऐसे विशिष्ट व्यञ्जनों का वर्णन किया है, जो अरुचि को दूर कर क्षुधा को तीव्र करते हैं तथा आरोग्य बढ़ाते हैं। पुस्तिका के अन्त में ग्रन्थकार ने १३७वां श्लोक पद्यसंख्या व ग्रन्थ-परिमाण की सूचना हेतु बनाया है।

पुस्तिका-गत विषय के वर्णन में ग्रन्थकार ने एक विशिष्ट क्रम रखा है। आरम्भ में राजा की पाकशाला के अधिकारी वैद्य, भोजनगृह, भोजन-पात्रों, पाचक (रसोइया), परिवेषिका (परोसने वाली सेविका) आदि का वर्णन किया है। तदनन्तर विषमिश्रित अन्न की पहचान के लिए भोजनगृह के निकट

ऐसे पक्षियों व वानर आदि अन्य प्राणियों को रखने का निर्देश किया है, जो विषमिश्रित अन्न को देखते ही विशिष्ट प्रकार की चेष्टाएं करने लगते हैं। इस प्रसङ्ग में उनकी वैसी चेष्टाओं का भी वर्णन किया है।

तत्पश्चात् ओदन, दाल, घी व शाक आदि मुख्य भोज्य पदार्थों का निरूपण कर नाना प्रकार के स्वादिष्ठ शाक, अवलेह, चटनी, बड़े आदि व्यञ्जनों का वर्णन किया है। इनमें फल, मूल, पुष्प व पत्तों आदि से बनाए जाने वाले विविध व्यञ्जन सम्मिलित हैं। आयुर्वेद में भोजन के अन्त में किसी पेय द्रव्य को अनुपान के रूप में लेने का विधान है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ग्रन्थ के अन्तिम भाग में **पाचनकारी तक्र एवं आम का पना** आदि कुछ विशिष्ट पेय व्यञ्जनों का वर्णन भी किया है। भोजनोपरान्त ताम्बूल-सेवन भी आयुर्वेद-सम्मत है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में व्यञ्जन-वर्णन के अनन्तर ताम्बूल (पान) का वर्णन भी किया है।

इस प्रकार इस छोटी-सी पुस्तिका में आयुर्वेद व पाकशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार स्वास्थ्योपयोगी स्वादिष्ठ भोज्य पदार्थों व व्यञ्जनों का बहुत सुरुचिपूर्ण वर्णन हुआ है। इन स्वादु भोज्यों को व्यञ्जन कहा जाता है, क्योंकि- **व्यज्यन्ते रसविशेषा अत्रेति व्यञ्जनम्**, इनमें रसविशेष अभिव्यञ्जित होते हैं, अनुभूत होते हैं। स्वास्थ्य के लिए इनकी जानकारी आवश्यक है। क्योंकि विशिष्ट पाकविधि से तैयार पथ्य अन्न ही औषध रूप बनकर सदा आरोग्य प्रदान करता है। महर्षि कश्यप कहते हैं-

न चाहारसमं किञ्चिद् भैषज्यमुपलभ्यते।
शक्यतेऽप्यन्नमात्रेण नरः कर्तुं निरामयः।।
भेषजेनोपपन्नोऽपि निराहारो न शक्यते।
तस्माद् भिषग्भिराहारो महाभैषज्यमुच्यते।।

(काश्यप-संहिता, खिलस्थान-४.५-६)

अर्थात् आहार के समान अन्य कोई औषध नहीं है। उचित एवं पथ्य आहार से ही व्यक्ति स्वस्थ किया जा सकता है। अनेक रोगों को दूर किया जा सकता है। औषध सेवन करते हुए भी व्यक्ति आहार के बिना नहीं रह सकता। अत: चिकित्सक जन आहार को ही महाभैषज्य कहते हैं।

आहार से सम्बद्ध यह विषय सर्वजनोपयोगी है तथा यहाँ सरल व सरस रूप में प्रस्तुत किया है। अत: हमें आशा है कि यह लघु पुस्तिका आयुर्वेद व पाकशास्त्र के उपयोगी विषय की जानकारी प्रदान कर अवश्य ही पाठकों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

ग्रन्थ का अन्वेषण व शोधन-

आयुर्वेद के अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थों के अन्वेषण के प्रसंग में **भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन,** आश्रम मार्ग, अहमदाबाद (गुजरात) से सर्वप्रथम इस पुस्तिका की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई। यह प्रति स्पष्ट व सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई है तथा लेखन भी प्राय: शुद्ध है। इसके कुछ ही स्थल अस्पष्ट व सन्देहग्रस्त थे। पाठ-मिलान के लिए अन्य हस्तलिखित प्रतियों का अन्वेषण करने पर हमें **प्राच्यविद्या-संस्थान, महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय बड़ौदा (गुजरात)** से इसकी अन्य दो प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई। इन सबका अवधानपूर्वक वाचन व पाठालोचन करते हुए पाठशोधन किया गया। इसमें शुद्धतम पाठ को मूलपाठ के रूप में रखा गया है तथा प्रतिलिपियों में उपलब्ध पाठान्तरों को संकलित कर पाद-टिप्पणियों में दर्शाया गया है। पाठशोधन में १६वीं शती ई. के पूर्वार्द्ध में रचित **क्षेमकुतूहल** नामक पाकशास्त्रीय रचना का सहयोग भी महत्त्वपूर्ण रहा है। क्योंकि क्षेमकुतूहल में रुचिवधू-गल-रत्नमाला के बहुत से पद्य उपलब्ध हैं, इनकी सूचना भी पाद-टिप्पणियों में दी गई है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक का समीक्षात्मक सम्पादन कार्य सम्पन्न हुआ है।

तदनन्तर जनसामान्य के उपयोग हेतु सरल हिन्दी भाषानुवाद किया गया है। कठिन व अपरिचित शब्दों के अर्थ कोष्ठक में दिए गए हैं। जहाँ कहीं विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता हुई वहाँ टिप्पणियाँ भी दी हैं। इस प्रकार सरल हिन्दी भाषार्थ के साथ यह पुस्तिका पहली बार प्रकाशित हो रही है। आशा है इसका यह संस्करण आयुर्वेद व पाकशास्त्र विषयक आवश्यक जानकारी हेतु पाठकों के लिए अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत पुस्तिका के परिशिष्ट भाग में प्रथम **परिशिष्ट** के अन्तर्गत हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपियों का परिचय दिया गया है। इसमें प्रतिलिपियों के कुछ आरम्भिक व अन्तिम पृष्ठों की प्रतिकृतियाँ भी प्रस्तुत की हैं। तदनन्तर **द्वितीय परिशिष्ट** में ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्दों का विवरण दिया गया है। इसमें छन्दों का लक्षण व उनके प्रयोगस्थल की पद्यसंख्या निर्दिष्ट है। **तृतीय परिशिष्ट** में संस्कृत-विद्वानों के लिए धारावाहिक रूप में पठनार्थ मूलपाठ रखा है। **चतुर्थ परिशिष्ट** में पद्यों के चरणों की अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका दी गई है, जो शोधकार्य की दृष्टि से विशेष रूप से उपयोगी है। **पञ्चम परिशिष्ट** में रुचिवधू-गल-रत्नमाला के क्षेमकुतूहल में उपलब्ध व अनुपलब्ध पद्यों का विवरण दिया है। **षष्ठ परिशिष्ट** में उन सन्दर्भ-ग्रन्थों का विवरण दिया गया है, जिनके उद्धरण भूमिका या व्याख्या-भाग में प्रस्तुत किए हैं। इसी में शब्दसंक्षेप-सूची भी दी है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तिका का पाठशोधन व सुव्यवस्थित सम्पादन कार्य सम्पन्न हुआ है।

आयुर्वेद के सिद्धान्तों को रोचक रूप में प्रस्तुत करने के लिए प्राचीन काल में इस प्रकार की बहुत-सी सुन्दर रचनाएं संस्कृत में लिखी जाती रही हैं। हमारा लक्ष्य है कि इस प्रकार के प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थरत्नों का अन्वेषण कर सरल अनुवाद के साथ सुसम्पादित रूप में समाज के लिए प्रस्तुत किया जाए। जिससे ऋषि-परम्परा की इस अमूल्य ज्ञानराशि से सभी लाभान्वित हो सकें।

अप्रकाशित प्राचीन दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों के अनुवाद सहित सम्पादन व प्रकाशन करने के पतञ्जलि विश्वविद्यालय के इस उपक्रम को मूर्त रूप देने में विशेष पुरुषार्थ व सहयोग के लिए वैदिक विद्वान् प्रो. डा. विजयपाल शास्त्री **'प्रचेता'** जी व उनके सहयोगियों के लिए भूरिशः धन्यवाद।

रुचिवधू-गल-रत्नमाला की पहली सुवाच्य हस्तलिखित प्रतिलिपि उपलब्ध करवाने वाले **प्रो. डा. आर.टी.सांवलिया (निदेशक, भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद)** के प्रति हम हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। पाठशोधन हेतु अन्य दो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध करवाने वाले **प्राच्यविद्या-शोध संस्थान**, बड़ौदा के प्रति भी हम अत्यन्त आभारी हैं। इनके विशिष्ट सहयोग से पाठशोधन व उत्तम सम्पादन हो सका है।

पुस्तक के अनेक सन्दिग्ध व अस्पष्ट स्थलों के स्पष्टीकरण में मुम्बई-निवासी प्रसिद्ध वैद्य **श्री एस.डी. (सदानन्द दिगम्बर) कामत** जी ने विशेष सहयोग किया है। एतदर्थ हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं।

-आचार्य बालकृष्ण

आयुर्वेद में अरुचि (अरोचक) का निदान व चिकित्सा

अरुचि (अरोचक) का स्वरूप व कारण-

भोजन के प्रति रुचि न होना या भोजन का नीरस लगना एक रोग है। इसे आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अरुचि या अरोचक नाम से निरूपित किया है। इसका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है-

प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नरः।
अरोचकः स विज्ञेयः। (भा.प्र., म.ख., अरोचकाधिकार-५)

अर्थात् मुख में डाला अन्न यदि स्वादिष्ठ नहीं लगता है तो अरोचक रोग जानना चाहिए। अरोचक का प्रसंग चरकसंहिता (चिकित्सास्थान, अध्याय-८, श्लोक-६०-६१) में पहले तो राजयक्ष्मा (टी.बी.) के उपद्रव के रूप में आया है। इसके अतिरिक्त आगे- चिकित्सास्थान अध्याय-२६, श्लोक-१२४-१२६ में अलग से भी अरोचक का निदान प्रस्तुत किया है तथा इसी अध्याय में आगे श्लोक २१५ से २२० तक इसकी चिकित्सा का वर्णन किया है। इससे स्पष्ट है कि यह किसी मुख्य रोग के उपद्रव के रूप में भी माना जाता है तथा छोटे रोगों की श्रेणी में अलग से भी गिना जाता है। अरोचक वात, पित्त व कफ के असन्तुलन से या मानसिक क्षोभ से होता है; जैसा कि चरक-संहिता में कहा है-

पृथग्दोषैः समस्तैर्वा जिह्वाहृदयसंश्रितैः ।
जायतेऽरुचिराहारे दुष्टैरर्थैश्च मानसैः ।। (च.सं., चि.-८.६०)

वात, पित्त एवं कफ, इनमें से किसी एक के असन्तुलित होने से अथवा इनमें से किन्ही दो या तीनों के एक साथ असन्तुलित होने से आहार में अरुचि उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त क्रोध, ईर्ष्या, भय, शोक, अपमान आदि अवाञ्छित मानसिक कारणों से भी अन्न के प्रति अरुचि हो जाती है।

वात आदि से होने वाली अरुचि के लक्षण-

कषायतिक्तमधुरैर्विद्यान्मुखरसै: क्रमात्।
वाताद्यैररुचिं जातां मानसीं दोषदर्शनात् ।। (च.सं.,चि.-८.६१)

वात आदि दोषों से उत्पन्न अरुचि को मुखरस (मुँह के स्वाद) से पहचाना जाता है। यदि मुँह का स्वाद कषाय (कसैला) हो तो जानना चाहिए कि अरुचि वातजन्य है। यदि मुँह का स्वाद तिक्त हो तो पित्तजन्य तथा मधुर हो तो कफजन्य अरुचि समझनी चाहिए।

वातादिभि: शोकभयातिलोभ-क्रोधैर्मनोघ्नाशनगन्धरूपै:।
अरोचका: स्यु: परिहृष्टदन्त-कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन।।

जैसे वात, पित्त, कफ से अरोचक होता है, इसी प्रकार शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, मन को कुण्ठित करने वाले अरुचिकर भोजन, बुरी गन्ध एवं बुरे रूप या बीभत्स दृश्यों से भी अरोचक होता है। वातजन्य अरोचक में दन्तहर्ष (दाँत खट्टे होना) व मुख में कसैलापन होता है।

कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम्।
माधुर्य-पैच्छिल्य-गुरुत्व-शैत्य-विबद्धसम्बद्धयुतं कफेन ।।

पित्त से होने वाले अरोचक में मुख का रस कटु (चरपरा), अम्ल, उष्ण, विरस, दुर्गन्धयुक्त व नमकीन हो जाता है। कफ से होने वाले अरोचक में माधुर्य, पैच्छिल्य (चिपचिपापन), गुरुत्व, शैत्य आदि से युक्त मुखरस हो जाता है।

अरोचके शोकभयातिलोभ-क्रोधाद्यहृद्याशुचि-गन्धजे स्यात्।
स्वाभाविकं चास्यमथाऽरुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेत्तु।।

(च.सं., चि.- २६.१२४-१२६)

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, बुरी व अपवित्रतापूर्ण गन्ध से उत्पन्न अरोचक में यद्यपि मुखरस स्वाभाविक ही रहता है, तथापि अन्न के प्रति

अरुचि हो जाती है। जो अरोचक एक साथ तीनों दोषों की विकृति से होता है, उसमें मुख का रस भी अनेक प्रकार का हो जाता है।

अरोचक (अरुचि) की चिकित्सा-

आयुर्वेद में अरोचक (अरुचि) की चिकित्सा निम्न प्रकार से बताई गई है-

अरुचौ कवलग्राहा धूमा: समुखधावना:।
मनोज्ञमन्नपानं च हर्षणाश्वासनानि च ।।

(च.सं., चि.-२६.२१५)

अरुचि में कवलग्राह (औषधीय द्रव्यों का कुल्ला), औषधीय धूमपान व मुखशोधन-द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त रुचिकर व स्वादिष्ठ अन्न का सेवन करना चाहिए तथा मन को प्रसन्न व आश्वस्त करने वाले व्यावहारिक उपाय अपनाने चाहिए।

कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचं बिडम्।
धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम्।।
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम्।
आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुत:।।
सतैलमाक्षिकास्त्वेते चत्वार: कवलग्रहा:।
चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान्।।

(च.सं., चि.-२६.२१६-११८)

कूठ, सौवर्चल (सोंचर नमक), जीरा, शर्करा, कालीमिर्च, बिडलवण-(विरिया नमक), इनका तेल व मधु के साथ लिया गया कवलग्रह (कुल्ला) वातजन्य अरोचक को नष्ट करता है।

आंवला, इलायची, पद्मक, उशीर (खस), पिप्पली, नीलकमल व चन्दन, इनका तेल एवं मधु के साथ लिया गया कवलग्रह पित्तजन्य अरोचक को नष्ट करता है।

लोध्र (पठानी लोध), तेजोवती (तेजबल), पथ्या (हरड़), त्रिकटु (सम भाग में लेकर बनाया हुआ सोंठ, कालीमिर्च व पीपल का चूर्ण), यवाग्रज (जवाखार), इनका तेल व मधु के साथ लिया गया कवलग्रह **कफजन्य अरोचक** को नष्ट करता है। अदरक व अनार का रस, जीरा एवं शर्करा- इनका तेल व मधु के साथ लिया गया कवलग्रह **त्रिदोषजन्य अरोचक** को नष्ट कर देता है।

कारवीमरिचाजाजीद्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम्।
सौवर्चलं गुड: क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम्।।

कारवी (मंगरैला), कालीमिर्च, जीरा, मुनक्का, वृक्षाम्ल (विषांविल), दाडिम (अनार), सौवर्चल (सोंचर नमक/काला नमक), गुड़ और मधु- इन्हें एक साथ मिलाकर गुटिका (गोलियाँ) बना लें। इनका सेवन करने से **सब प्रकार का अरोचक** (अरुचि-विकार) नष्ट हो जाता है।

बस्तिं समीरणे, पित्ते विरेकं वमनं कफे।
कुर्याद् हृद्यानुकूलानि हर्षणं च मनोघ्नजे।।

(च.सं., चि.-२६.२१९-२२०)

वातजन्य अरोचक में बस्तिप्रयोग, पित्तदोषजन्य अरोचक में विरेचन तथा कफदोषजन्य अरोचक में वमन करवाना चाहिए। मानसिक आघात से होने वाले अरोचक में मन को प्रसन्न करने वाले तथा हृदय को प्रिय लगने वाले उपाय व भोजन-पान की व्यवस्था करनी चाहिए। इस प्रकार चरक-संहिता के अनुसार यह अरोचक की चिकित्सा है।

चरकसंहिता (सूत्रस्थान, अध्याय-५) में भी अरुचि का निवारण कर रुचि बढ़ाने वाले कुछ अन्य व्यावहारिक उपाय बताए हैं। जैसे कि- दोनों समय- प्रात: उठने पर व रात्रि में शयन से पहले दन्तधावन (दातुन), जिह्वानिर्लेखनी (जीभी) द्वारा जिह्वा का शोधन, जायफल, लताकस्तूरी, सुपारी, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची आदि का चर्वण (चबाना), तैलगण्डूष-धारण (कुछ

समय तक मुख में तेल भरकर कुल्ले के रूप में चलाते हुए रखना) आदि। ये सभी अरुचि-नाशक के रूप में आयुर्वेद में प्रसिद्ध हैं। अरोचकनाशक एक अन्य उपाय भी आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बताया है, जो वैद्य समाज में बहुत ही प्रसिद्ध तथा व्यावहारिक भी है-

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्।
अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्।। (भा.प्र.नि.- १.५१)

भोजन के आरम्भ में सैन्धव लवण के साथ थोड़ी मात्रा में अदरक का सेवन सदा पथ्य (हितकर) होता है। यह अग्नि-सन्दीपन, रुचिकारक तथा जिह्वा एवं कण्ठ को शुद्ध करने वाला होता है। इससे भोजन में रुचि जागृत होती है एवं पाचन भी अच्छे प्रकार से होता है।

अष्टांगहृदयकार वैद्यराज वाग्भट अरोचक-निवारण के विषय में कहते हैं-

विचित्रमन्नमरुचौ हितैरुपहितं हितम् ।
बहिरन्तर्मृजा चित्तनिर्वाणं हृद्यमौषधम्।।
द्वौ कालौ दन्तपवनं भक्षयेन्मुखधावनैः।
कषायैः क्षालयेदास्यं धूमं प्रायोगिकं पिबेत्।।

(अ.हृ., चि.-५.४७-४८)

अर्थात् अरुचि में ऐसे विचित्र नाना प्रकार के स्वादिष्ठ अन्न का सेवन करना चाहिए, जो हितकर पदार्थों एवं रुचिकर व सुगन्धित मसालों से मिश्रित हो। शरीर की बाहरी स्वच्छता स्नान आदि से तथा अन्दर की स्वच्छता वमन, विरेचन से करनी चाहिए। चित्त को स्वच्छ, प्रसन्न व शान्त रखना चाहिए। हृदय को प्रिय लगने वाले हितकर औषधों का सेवन करना चाहिए। प्रातः-सायं दन्तधावन (दातुन) करना चाहिए तथा मुखशुद्धि-कारक कषायों से मुखशोधन करना चाहिए। प्रायोगिक अर्थात् स्नैहिक एवं वैरेचनिक धूमपान से भिन्न प्रतिदिन किया जाने वाला औषधीय धूमपान भी अरुचि-निवारण में उपयोगी होता है।

उपर्युक्त अरुचि-निवारण के उपायों में विचित्र अन्नपान का सेवन भी एक विशिष्ट उपाय बताया है। इसी के अनुसार **रुचिवधू-गल-रत्नमाला** में विचित्र व्यञ्जनों का निरूपण किया गया है। ये अरुचि को दूर कर क्षुधा बढ़ाते हैं तथा स्वास्थ्य के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं।

अरुचि का मुख्य कारण अतिभोजन-

अतिमात्र आहार भी अरुचि का एक मुख्य कारण है। अत: इसका निवारण भी अरुचि की चिकित्सा में आवश्यक माना गया है। अतिभोजन से वात, पित्त, कफ- ये तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं व अपच होकर भोजन में अरुचि हो जाती है। इसके निवारण के लिए लंघन (एक या दो काल का उपवास) सर्वोत्तम उपाय है। उपवास में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में उबालकर रखा हुआ हल्का उष्ण जल पीते रहना चाहिए। इससे अपच दूर हो जाती है तथा भोजन में पुन: रुचि जागृत हो जाती है। मिताहारी व्यक्ति को अरुचि की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है। अत: भोजन में रुचि व स्वाद बना रहे, इसके लिए मिताहार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस विषय में व्यक्ति को विशेष रूप से जागरूक रहना चाहिए। कहा भी है-

एकभुक्तं सदारोग्यं द्विभुक्तं बलवर्धनम्।
त्रिभुक्तं च सदारोगं चतुर्भुक्तं तु मारकम्।।

(द्रव्यरत्नाकरनिघण्टु, दिनऋतुचर्यादिवर्ग- ८)

एक बार भोजन करना सदा आरोग्यकारक होता है, दो बार भोजन करना बलवर्द्धक होता है। तीन बार भोजन करना सदा रोगकारक होता है तथा चार बार भोजन करना तो साक्षात् मारक ही बन जाता है।

एक बार भोजन को सदा आरोग्यकारक इसलिए बताया है कि ऐसा करने से भोजन का पाचन पूर्णतया हो जाता है। तेज भूख लगती है और तीव्र जठराग्नि प्रतिदिन ही रोगकारक दोषों व मलों को जला देती है। अत: रोग होने का अवसर ही नहीं आता है। ढलती उम्र में भी एक बार भोजन करना

तथा दूसरे समय हल्का फलाहार या दुग्धाहार लेना आरोग्य व दीर्घायु के लिए बहुत उत्तम होता है। बढ़ती नई उम्र में तथा युवावस्था में दो बार भोजन करना चाहिए। यह बलवर्द्धक होता है। तीन बार के भोजन से तो प्राय: अजीर्ण हो जाता है। उससे आमाशय में मल कुपित हो जाते हैं तथा वे ही सब रोगों के कारण बनते हैं। जैसा कि कहा है-

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मला:। (माधवनिदानम्- १.१४)

अर्थात् कुपित हुए मल ही सब रोगों के कारण होते हैं। एक काल भोजन करने वाले को अजीर्ण होने या मलों के कुपित होने की सम्भावना प्राय: नहीं होती है।

बच्चों को भी प्रातराश (नाश्ते) में फल व दूध आदि लघु व सात्त्विक भोज्य देना चाहिए। इससे वे सदा स्वस्थ व स्फूर्तिमान् रहते हैं। नाश्ते में फल व दूध आदि पेय को छोड़कर अन्नमय भोज्य रोटी आदि, बिस्किट अथवा पराठा आदि तले हुए भारी भोज्य देने से अजीर्ण की सम्भावना रहती है तथा बच्चों में मोटापा आदि विकार बढ़ते हैं। बाल्यकाल में भी तीनों समय अन्नबहुल भोजन देने से अम्लता की वृद्धि होती है, जो रोगों का कारण बनती है। अत: बच्चों को नाश्ते में फल, दूध आदि देना ही अधिक उचित है। प्रौढ़ लोगों द्वारा एककाल-भोजन करने से तो अजीर्ण की सम्भावना ही नहीं रहती, अत: इसे सदा आरोग्यकारक कहा गया है।

आहार-मात्रा

चरकसंहिता सूत्रस्थान के मात्राशितीय अध्याय में आहारमात्रा के विषय में बहुत ही उत्तम विवेचन किया है। इसकी जानकारी प्रत्येक आरोग्याभिलाषी व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार चरकसंहिता विमानस्थान के त्रिविधकुक्षीय अध्याय में अतिभोजन-जन्य दोषों का यथार्थ चित्रण करते हुए मितभोजन का महत्त्व बताया गया है। पाठकों की ज्ञानवृद्धि के लिए उक्त अध्यायों का कुछ अंश यहां प्रस्तुत किया जा रहा है-

मात्राशितीय अध्याय

अथातो मात्राशितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माह भगवानात्रेयः।

अब मात्राशितीय अध्याय का उपदेश करेंगे, ऐसा भगवान् (पूजित ज्ञान से सम्पन्न) मुनिवर आत्रेय पुनर्वसु ने कहा।

मात्राशी स्यात्। आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी। यावद्ध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यं भवति।

मनुष्य को मात्राशी (मात्रायुक्त भोजन करने वाला) होना चाहिए। भोजन की मात्रा अग्निबल (पाचनशक्ति) के अनुसार होती है। जितना भोजन सहज स्थिति को बाधित न करते हुए यथासमय पच जाता है, वही मात्रा का उचित प्रमाण जानना चाहिए।

तत्र शालि-षष्टिक-मुद्गादीन्याहारद्रव्याणि प्रकृतिलघून्यपि मात्रापेक्षीणि भवन्ति। तथा पिष्टेक्षु-क्षीरविकृति-तिल-माषादीन्याहारद्रव्याणि प्रकृतिगुरूण्यपि मात्रामेवापेक्षन्ते।

शालि (चावल), षष्टिक (साठी चावल), मूंग आदि आहार द्रव्य

स्वभावतः लघु होते हुए भी मात्रा की अपेक्षा रखते हैं, अर्थात् भले ही ये पचने में हल्के हैं, तथापि इन्हें मात्रा में ही खाना चाहिए। अतिमात्रा में खाने से तो ये भी अजीर्णकारक होने से बहुत हानि करते हैं।

इसके अतिरिक्त आटे से बने हुए (रोटी, पूरी, हलुआ आदि), इक्षुविकार (गुड़, शक्कर आदि), क्षीरविकार (खीर, मलाई, खोआ आदि) तथा तिल व माष (उड़द) से बने आहारद्रव्य स्वभावतः गुरु (पचने में भारी) होते हैं। इन्हें पूर्वोक्त लघु भोज्यों की मात्रा से अल्प मात्रा में ही खाना चाहिए।

न चैवमुक्ते द्रव्ये गुरुलाघवमकारणं मन्येत, लघूनि हि द्रव्याणि वाय्वग्निगुणबहुलानि भवन्ति; पृथ्वीसोमगुणबहुलानीतराणि, तस्मात् स्वगुणादपि लघून्यग्निसन्धुक्षणस्वभावान्यल्पदोषाणि चोच्यन्तेऽपि सौहित्योपयुक्तानि, गुरूणि पुनर्नाग्निसन्धुक्षणस्वभावान्यसामान्यात्, अतश्चातिमात्रं दोषवन्ति सौहित्योपयुक्तान्यन्यत्र व्यायामाग्निबलात्; सैषा भवत्यग्निबलापेक्षिणी मात्रा।।

लघु द्रव्य तथा गुरु द्रव्य दोनों ही मात्रा की अपेक्षा करते हैं अर्थात् उन्हें उचित मात्रा में ही खाना चाहिए; ऐसा निर्धारण कर देने पर द्रव्यों की अपनी-अपनी स्वाभाविक गुरुता व लघुता व्यर्थ है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि लघु द्रव्य वात तथा अग्नि के गुण की प्रधानता वाले होते हैं। इसके विपरीत गुरु द्रव्य पृथ्वी तथा सोम (जल) के गुण की प्रधानता वाले होते हैं। इसलिए लघु द्रव्य अग्निगुण-प्रधान होने से पाचकाग्नि को प्रदीप्त करते हैं। इन्हें सौहित्य-पूर्वक (जीभर कर) खाने पर भी ये अल्प दोषकारक होते हैं। जबकि गुरु द्रव्य अग्नि के विपरीत गुण वाले होने से जठराग्नि-दीपन नहीं होते हैं। यदि पर्याप्त व्यायाम न करने वाला तथा अतीव्र जठराग्नि वाला व्यक्ति इन्हें तृप्ति पर्यन्त (जीभर कर) खाए तो ये बहुत अधिक दोषकारक बन जाते हैं। इस प्रकार उचित आहार मात्रा वही मानी जाती है, जो जठराग्नि की क्षमता के अनुसार हो।

न च नापेक्षते द्रव्यं; द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्यमर्धसौहित्यं वा गुरूणामुपदिश्यते, लघूनामपि च नातिसौहित्यमग्नेर्युक्त्यर्थम्।।

उक्त कथन का तात्पर्य यह भी नहीं है कि आहार मात्रा द्रव्य की अपेक्षा नहीं रखती। वस्तुत: आहार मात्रा द्रव्य की अपेक्षा से भी निर्धारित की जाती है। जैसा कि विधान है- गुरु द्रव्यों को त्रिभाग तृप्ति पर्यन्त या आधी तृप्ति पर्यन्त ही खाना चाहिए, पूर्ण तृप्ति पर्यन्त नहीं।

मात्रावद्ध्यशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं बलवर्णसुखायुषा योजयत्युपयोक्तारमवश्यमिति।।

इसलिए उचित मात्रा में लिया भोजन ही व्यक्ति की प्रकृति को बाधित न करते हुए उसे बल, वर्ण व सुखायु (सुखी जीवन) से युक्त करता है।

गुरु पिष्टमयं तस्मात्तण्डुलान् पृथुकानपि।
न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद् बुभुक्षित:।।

मिष्टान्न आदि गुरु पदार्थ, आटे के बने भोज्य पदार्थ, भात व पृथुक (चिउड़ा) आदि को एक बार खाने के उपरान्त कभी भी भोजन-काल से पहले दोबारा नहीं खाना चाहिए। भूख लगने पर भोजन-काल में भी उचित मात्रा में ही खाना चाहिए, अधिक नहीं।

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्।।

उन पदार्थों का नित्य सेवन करना चाहिए, जिनसे स्वास्थ्य बना रहता है तथा जो अजात (अब तक न उत्पन्न हुए) विकारों को उत्पन्न नहीं होने देते। इस प्रकार के पदार्थ स्वभावत: हितकर आहारद्रव्य माने जाते हैं। इनमें लोहित शालि (लाल चावल), षष्टिक (साठी चावल), जौ, मूंग, सैन्धव लवण, अनार, आंवला, मुनक्का, बथुआ, जीवन्ती (डोडी) शाक, गाय का दूध, गाय का घी, तिल का तेल एवं वृष्टिजल (वर्षा का

स्वच्छतापूर्वक एकत्र किया जल) आते हैं। स्वभावत: अहितकर पदार्थों के अन्तर्गत उड़द, ऊषरभूमि का लवण, बड़हल का फल व सरसों का शाक आता है।

इस प्रकरण के अन्तर्गत चरकसंहिता में इस तथ्य को भी रेखांकित किया है कि उड़द व दही का नित्य सेवन नहीं करना चाहिए-

दधि च माषांश्च न शीलयेत्

उड़द यद्यपि बलवर्धक होता है, तथापि पचने में भारी तथा कफपित्त-जनक होता है, अत: इसका नित्य सेवन निषिद्ध है। दही भी यद्यपि स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है, तथापि वर्षा, हेमन्त एवं शिशिर में ही सेवनीय होता है। आयुर्वेद के अनुसार वसन्त, ग्रीष्म व शरद् में दही के सेवन से बचना चाहिए। क्योंकि कफपित्तकर होने से कफप्रकोप वाली वसन्त तथा पित्त के संचय व प्रकोप वाली ग्रीष्म एवं शरद् ऋतुओं में दही के सेवन से विकार की सम्भावना रहती है।

इस विषय में अन्यत्र भी कहा है- **कफपित्तकरो माष: कफपित्तकरं दधि,** (भावप्रकाश-निघण्टु- ८.४४) अर्थात् उड़द व दही दोनों ही कफपित्तकर होते हैं, अत: इनका पूरे वर्ष निरन्तर सेवन निषिद्ध किया है।

-(चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अध्याय -५, मात्राशितीय अध्याय)

त्रिविधकुक्षीय विमानाध्याय

भोजन की हीनमात्रा व अतिमात्रा के दोष व दुष्परिणाम

अथातस्त्रिविधकुक्षीयं विमानं व्याख्यास्याम:।
इति ह स्माह भगवानात्रेय:।

अब त्रिविधकुक्षीय विमान (विशिष्ट ज्ञान) का उपदेश करेंगे, ऐसा भगवान् (पूजित ज्ञान से सम्पन्न) मुनिवर आत्रेय पुनर्वसु ने कहा।

आमाशय का त्रिविध विभाग

त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जानः; तद्यथा- एकमवकाशांशं मूर्तानामाहारविकाराणाम्, एकं द्रवाणाम्, एकं पुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम्; एतावतीं ह्याहारमात्रामुपयुञ्जानो नामात्राहारजं किञ्चिदशुभं प्राप्नोति।।

आहार का उपयोग करते हुए मनुष्य को कुक्षि (आमाशय) में तीन भाग बना लेने चाहिए। एक भाग ठोस अन्न के लिए, दूसरा जल, दूध आदि द्रव के लिए तथा तीसरा वात, पित्त व कफ के लिए रखना चाहिए।

ये भाग औचित्य के अनुसार विभक्त होते हैं, न कि तीनों बराबर-बराबर रूप में। अत: अन्न वाला भाग अन्य दो की अपेक्षा बड़ा होता है। इस विभाग के अनुसार आहारमात्रा का उपयोग करने वाला अनुचित मात्रा वाले आहार के अशुभ व कष्टकर परिणामों से बचा रहता है।

तत्रायं तावदाहारराशिमधिकृत्य मात्रामात्राफलविनिश्चयार्थः प्रकृतः। एतावानेव ह्याहारराशिविधिविकल्पो यावन्मात्रावत्त्वममात्रावत्त्वं च।।

यहां आहारराशि की मात्रा एवं अमात्रा के फल-विनिश्चय का प्रसंग है। अत: भोजन की मात्रावत्ता एवं अमात्रावत्ता पर ही विशेष विचार किया जा रहा है।

उचित आहार मात्रा के लक्षण

तत्र मात्रावत्त्वं पूर्वमुद्दिष्टं कुक्ष्यंशविभागेनन, तद् भूयो विस्तरेणानुव्याख्यास्यामः। तद्यथा- कुक्षेरप्रपीडनमाहारेण, हृदयस्यानवरोधः, पार्श्वयोरविपाटनम्, अनतिगौरवमुदरस्य, प्रीणनमिन्द्रियाणां, क्षुत्पिपासोपरमः, स्थानासन-शयन-गमनोच्छ्वास-प्रश्वास-हास्य-संकथासु सुखानुवृत्तिः, सायं प्रातश्च सुखेन परिणमनं, बलवर्णोपचयकरत्वं च; इति मात्रावतो लक्षणमाहारस्य भवति।।

इस विषय में मात्रावत्ता का निर्देश कुक्षि (आमाशय) के अंशविभाग द्वारा पहले कहा है। इसी का यहां विस्तार से व्याख्यान करेंगे। जैसे कि- भोजन की मात्रा से आमाशय का पीड़ायुक्त न होना, हृदय का अवरोध न होना, अर्थात् हृदय पर दबाव न पड़ना, पार्श्वभागों में फटने जैसी पीड़ा न होना, अर्थात् भोजन की मात्रा से उनमें खिंचाव न होना, उदर का भारी न होना, इन्द्रियों का प्रसन्न होना, भूख व प्यास का शमन होना, खड़े होने, बैठने, लेटने, चलने, श्वास लेने, हंसने या बातचीत करने में सुखानुवृत्ति (आराम की स्थिति होना), सायं-प्रातः सुख से भोजन का पाचन हो जाना, भोजन द्वारा बल, वर्ण व पुष्टि की वृद्धि होना, ये मात्रायुक्त आहार (मिताहार) के लक्षण हैं।

हीन आहार मात्रा

अमात्रावत्त्वं पुनर्द्विविधमाचक्षते- हीनम्, अधिकं च। तत्र हीन-मात्रमाहारराशिं बलवर्णोपचयक्षयकरमतृप्तिकरमुदावर्त्तकरमनायुष्य-वृष्यमनौजस्यं शरीरमनोबुद्धीन्द्रियोपघातकरं सारविधमनमलक्ष्म्यावह-मशीतेश्च वातविकाराणामायतनमाचक्षते।

अमात्रा (अनुचित मात्रा) वाला भोजन दो प्रकार का होता है- हीन (कम) व अधिक। इन दोनों में जो हीन मात्रा वाला आहार होता है, वह बल, वर्ण व पुष्टि का क्षय करता है। तृप्ति नहीं कर पाता है। उदावर्त्त (उदर में उठने वाला वायुगोला) रोग का जनक होता है। यह जीवन व शुक्र को क्षीण करने वाला, ओजनाशक, शरीर, मन व ज्ञानेन्द्रियों को कमजोर करने वाला, शरीर के अष्टविध सारों को दुर्बल करने वाला और शरीर में म्लानता (शोभाहीनता) लाने वाला होता है। अत्यल्प मात्रा वाला भोजन अस्सी प्रकार के वात-विकारों का कारण कहा जाता है।

अतिमात्रा के दोष व दुष्परिणाम

अतिमात्रं पुनः सर्वदोषप्रकोपणमिच्छन्ति कुशलाः। यो हि मूर्तानामाहारजातानां सौहित्यं गत्वा द्रवैस्तृप्तिमापद्यते भूयस्तस्यामाशयगता वातपित्तश्लेष्माणोऽभ्यवहारेणातिमात्रेणातिप्रपीड्यमाना सर्वे युगपत् प्रकोपमापद्यन्ते, ते प्रकुपितास्तमेवाहारराशिमपरिणतमाविश्य कुक्ष्येकदेशमन्नाश्रिता विष्टम्भयन्तः सहसा वाप्युत्तराधराभ्यां मार्गाभ्यां प्रच्यावयन्तः पृथक् पृथगिमान् विकारानभिनिर्वर्तयन्त्यतिमात्रभोक्तुः।

तत्र वातः शूलानाहाङ्गमर्दमुखशोषमूर्च्छाभ्रमाग्निवैषम्यपार्श्वपृष्ठकटिग्रह-सिराकुञ्चनस्तम्भनानि करोति, पित्तं पुनर्ज्वरातीसारान्तर्दाहतृष्णामदभ्रम-प्रलपनानि, श्लेष्मा तु छर्द्यरोचकाविपाक-शीतज्वरालस्यगात्रगौरवाणि।।

अधिक मात्रा में किए गए भोजन को कुशल चिकित्सक सभी दोषों को प्रकुपित करने वाला मानते हैं। जो मनुष्य (दाल-रोटी, भात-शाक आदि) ठोस आहार पदार्थों से तृप्त होकर अर्थात् जीभर खाने के उपरान्त द्रव (दूध, छाछ या रस आदि) से पुनः तृप्ति करता है, उसके आमाशयगत वात, पित्त, कफ अत्यधिक भोजन से पीड़ित होने के कारण एक साथ प्रकुपित हो जाते हैं। प्रकुपित हुए ये तीनों दोष न पचने वाली अन्नराशि में प्रविष्ट होकर कुक्षि के एक भाग में स्थित अन्न को विष्टब्ध (जकड़ा हुआ) करके उत्तरमार्ग (मुख) या अधोमार्ग (मलद्वार) से निकालने लगते हैं और आगे लिखे विकारों को पैदा करते हैं-

अतिमात्र आहार से **प्रकुपित** वात शूल, आनाह, अङ्गमर्द, मुखशोष, मूर्छा, भ्रम, अग्निवैषम्य (भूख का असन्तुलन) करता है तथा पार्श्व, पीठ, कमर में जकड़न एवं शिराओं का आकुञ्चन व स्तम्भन करता है।

अतिमात्र आहार से प्रकुपित पित्त ज्वर, अतिसार, अन्तर्दाह, तृष्णा, मद, भ्रम तथा प्रलाप को पैदा करता है। इसी प्रकार प्रकुपित हुआ कफ, वमन, अरोचक, अपचन, शीतज्वर व आलस्य पैदा करता है।

इससे स्पष्ट है कि अतिमात्र भोजन नाना अनर्थों का कारण बनता है। यही नहीं, यह आयुर्वेद में वर्णित विसूचिका (हैजा) व अलसक (गुमहैजा) नामक भयंकर जानलेवा रोगों को पैदा कर अन्ततः प्राणहर बन जाता है। अतः बुद्धिमान् जनों को उक्त भयानक रोगों को ध्यान में रखते हुए भोजन की अतिमात्रा से सदा बचना चाहिए।

हानिकर आहार के अन्य रूप

न च खलु केवलमतिमात्रमेवाहारराशिमामप्रदोषकरमिच्छन्ति, अपि तु खलु गुरुरूक्षशीतशुष्कद्विष्टविष्टम्भि-विदाह्यशुचिविरुद्धानामकाले चान्नपानानामुपसेवनं, कामक्रोधलोभमोहेर्ष्याह्रीशोकमानोद्वेग-भयोप-तप्तमनसा वा यदन्नपानमुपयुज्यते, तदप्यामहेव प्रदूषयति।।

केवल अतिमात्र भोजन ही आम दोष को उत्पन्न करता है, ऐसी बात नहीं, अपितु गुरु (पचने में भारी), रूक्ष (रूखा), शीत (बहुत ठण्डा), शुष्क (सर्वथा जलीय अंश से रहित), द्विष्ट (अरुचिकर/अवाञ्छित), विष्टम्भी (कब्जकारक), विदाही (जलन करने वाला), अपवित्र तथा संयोगविरुद्ध अन्न-पान भी आमदोषकारक होता है। इसी प्रकार असमय में अन्नसेवन से भी अपच हो जाती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, लज्जा, शोक, अभिमान, उद्वेग एवं भय से दुःखी मन वाले व्यक्ति के द्वारा जो अन्न-पान लिया जाता है, वह भी पचता नहीं है तथा आमदोष को दूषित करता है। इस तथ्य को श्लोक द्वारा निरूपित किया है-

भवति चात्र- **मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति।**
चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः।।

अर्थात् चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, दुःखशय्या (कष्टदायक ऊंची-नीची खाट व बिस्तर) और रात्रि में जागरण, इन कारणों से उचित मात्रा में खाया हुआ पथ्य अन्न भी अच्छे प्रकार से नहीं पचता है व आम (आंव) बन जाता है। यह आंव ही आगे चलकर विसूचिका (हैजा) व अलसक (गुम हैजा) का कारण बनकर जानलेवा हो जाता है। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को मिताहारी होकर इन भयंकर रोगों से बचना चाहिए।

-(चरकसंहिता, विमानस्थान, अध्याय- २, त्रिविधकुक्षीय-विमानाध्याय)

दिन में सोना भी अरुचि का कारण-

ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य ऋतुओं में दिन में सोना बहुत हानिकारक होता है, विशेष रूप से दिन के भोजन के बाद तुरन्त सोना। इससे अतिमात्रा में बढ़ा हुआ कफ जठराग्नि को मन्द कर देता है। कहा भी है-

'ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वापो निषिध्यते'।

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य ऋतुओं में दिन में सोना निषिद्ध है; क्योंकि यह सर्वदोषप्रकोपक होने से अति हानिकारक है। अन्यत्र भी कहा है-

'भुक्तमात्रस्य शयनाद् हन्त्यग्निं कुपितः कफः'।

अर्थात् भोजन करते ही दिन में सोने से अति कुपित हुआ कफ जठराग्नि को नष्ट कर देता है। सुश्रुत-संहिता में भी कहा है-

सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात्। विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम, तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्च, तत्प्रकोपाच्च कास-श्वास-प्रतिश्याय-शिरोगौरवाङ्गमर्दारोचक-ज्वराग्निदौर्बल्यानि भवन्ति।

(सुश्रुत-संहिता, शारीरस्थान- ४.३८)

अर्थात् दिन में सोना एक विकृति है। दिन में सोने वालों को अधर्म (पाप) लगता है तथा वात, पित्त व कफ- ये तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं। इससे कास (खाँसी), श्वास (दमा), प्रतिश्याय (जुकाम), शिर में भारीपन,

अंगों में टूटन, ज्वर, अरुचि व मन्दाग्नि इत्यादि उपद्रव होते हैं। अत: ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य ऋतुओं में दिन में सोने से बचें।

ग्रीष्म ऋतु में रात छोटी तथा दिन लम्बे होते हैं। प्रचण्ड आतप (धूप) के कारण वातावरण व शरीर में रूक्षता आ जाती है। अत: दिन में सोना उचित माना है; क्योंकि इससे शरीर में स्निग्धता व तरावट आती है तथा दोषों का सन्तुलन बना रहता है। आयुर्वेद के अनुसार बाल, वृद्ध, रोगी व रात में आजीविका-कार्य करने वालों के लिए दिन में सोना मान्य है।

तन-मन के स्वास्थ्य का अमोघ उपाय मिताहार -

पूर्वप्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि अतिभोजन व दिवाशयन आदि आमदोष व अरुचि का मुख्य कारण हैं। इनसे बचते हुए मिताहार को अपनाएं। आयुर्वेद ही नहीं, अध्यात्मविद्या के ग्रन्थों में भी मिताहार की उपादेयता व महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। यहां हम महाकवि अश्वघोष-विरचित **सौन्दरनन्द** नामक मोक्षमार्ग-प्रतिपादक महाकाव्य से मिताहार-विषयक कुछ उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जो स्वास्थ्य व आध्यात्मिक उन्नति चाहने वालों के लिए बहुत ही मार्मिक रूप में प्रेरणाप्रद हैं-

सौन्दरनन्दम्, सर्ग-१४, श्लोक-१-१२

अथ स्मृतिकवाटेन पिधायेन्द्रियसंवरम्।
भोजने भव मात्राज्ञो ध्यानायानामयाय च।।१।।

स्मृति (जागरूकता) रूपी किवाड़ से इन्द्रियरूपी द्वारों को बन्द करके अर्थात् इन्द्रियों को वश में करके ध्यान और आरोग्य के लिए भोजन की समुचित मात्रा जानो अर्थात् मितभोजन करो। क्योंकि अतिभोजन व अत्यल्प भोजन, ये दोनों ही आरोग्य व ध्यान-साधना के बाधक होते हैं।

प्राणापानौ निगृह्णाति ग्लानिनिद्रे प्रयच्छति।
कृतो ह्यत्यर्थमाहारो विहन्ति च पराक्रमम्।।२।।

यदि अधिक भोजन किया जाए तो वह प्राण व अपान की गति को बाधित करता है, आलस्य और नींद लाता है तथा पराक्रम (उद्यमशीलता) को नष्ट कर देता है।

योग-साधना में प्राणायाम का अभ्यास बहुत आवश्यक है, क्योंकि इससे तन-मन के विकार नष्ट हो जाते हैं, रजोगुण व तमोगुण की प्रवृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। सात्त्विकता बढ़ती है। मन एकाग्र होने लगता है तथा धारणा-ध्यान की योग्यता आ जाती है। प्रस्तुत पद्य में स्पष्ट रूप से कहा है कि अति भोजन से प्राण व अपान की गति बाधित हो जाती है अर्थात् अति भोजन से भारी पेट वाला व्यक्ति प्राणायाम नहीं कर पाता है। अतः प्राणायाम की साधना करने के लिए आहार का संयम करना अति आवश्यक है। इसीलिए गीता में कहा है-

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।। (गीता-४.३०)

अर्थात् आहार पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति प्राणयज्ञ (प्राणायाम की साधना) से तन-मन के विकारों को नष्ट कर देते हैं।

यथा चात्यर्थमाहारः कृतोऽनर्थाय कल्पते।
उपयुक्तस्तथात्यल्पो न सामर्थ्याय कल्पते।।३।।

जिस प्रकार अधिक भोजन करने से अनर्थ होता है, उसी प्रकार अत्यल्प भोजन से भी शक्ति नहीं मिलती तथा दुर्बलता के कारण व्यक्ति कर्त्तव्य करने में असमर्थ हो जाता है। अतः अत्यल्प भोजन भी नहीं करना चाहिए।

आचयं द्युतिमुत्साहं प्रयोगं बलमेव च।
भोजनं कृतमत्यल्पं शरीरस्यापकर्षति।।४।।

अत्यल्प भोजन करने से शरीर की पुष्टि नहीं हो पाती है तथा कान्ति,

उत्साह, सक्रियता और बल का ह्रास हो जाता है।

यथा भारेण नमते लघुनोन्नमते तुला।
समा तिष्ठति युक्तेन भोज्येनेयं तथा तनुः।।५।।

जैसे अधिक भार से तुला झुकती है, हल्के भार से उठ जाती है और उचित भार से समान रहती है, उसी प्रकार (अधिक, अल्प एवं युक्त/मित) आहार से शरीर क्रमशः भारी, क्षीण व स्वस्थ बनता है।

तस्मादभ्यवहर्तव्यं स्वशक्तिमनुपश्यता।
नातिमात्रं न चात्यल्पं मेयं मानवशादपि।।६।।

इसलिए अपनी शक्ति (पाचनक्षमता) को देखते हुए भोजन करना चाहिए, हठपूर्वक न बहुत अधिक और न ही बहुत कम। क्षुधा के अनुसार मित (मापा हुआ अर्थात् न कम, न अधिक) भोजन करना ही मिताहार कहलाता है।

अत्याक्रान्तो हि कायाग्निर्गुरुणान्नेन शाम्यति।
अवच्छन्न इवाल्पोऽग्निः सहसा महतैधसा।।७।।

शरीर की पाचकाग्नि अति भोजन के भार से दबकर ऐसे ही शान्त हो जाती है, जैसे थोड़ी आग सहसा बहुत अधिक इन्धन डालने से बुझ जाती है। अतः अतिभोजन कदापि नहीं करना चाहिए।

अत्यन्तमपि संहारो नाहारस्य प्रशस्यते।
अनाहारो हि निर्वाति निरिन्धन इवानलः।।८।।

भोजन को सर्वथा छोड़ देना भी प्रशंसनीय नहीं है, क्योंकि भोजन न करने वाले मनुष्य की जठराग्नि वैसे ही शान्त जाती है, जैसे इन्धन न डालने से अग्नि स्वयमेव शान्त हो जाती है।

यस्मान्नास्ति विनाहारात्सर्वप्राणभृतां स्थितिः।
तस्माद् दुष्यति नाहारो विकल्पोऽत्र तु वार्यते।।९।।

क्योंकि भोजन के बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता, इसलिए भोजन में दोष नहीं है, किन्तु भोजन की आसक्ति अर्थात् रसविशेष में राग निषिद्ध है।

बुद्ध का वचन है- जिह्वारसासक्ति से ग्रस्त व्यक्ति निरयगामी (नरकगामी) हो जाता है। वह नरक कहीं अन्यत्र नहीं, यहीं है। जिह्वा- लोलुपता से अपथ्याहार करने वाले नानाविध भयंकर रोगों से पीड़ित होकर यहीं नारकीय दुःख भोगते दिखाई देते हैं। यह बहुत बड़ा सत्य है कि जहाँ-जहाँ रोग की गहन पीड़ा दिखती है, वहाँ निश्चित रूप से उसके पीछे रसासक्ति ही कारण होती है। यह चिरपरीक्षित कटु सत्य है-

लोभमूलानि पापानि रसमूला व्यथाः स्मृताः।
स्नेहमूला हि शोकाश्च त्रयं त्यक्त्वा सुखी भव।।

अर्थात् सभी पाप लोभमूलक होते हैं। सभी रोगों की व्यथा (पीड़ा) रसासक्तिमूलक होती है, और सब शोक रागमूलक होते हैं। यदि लोभ, रसासक्ति व राग को विवेकदृष्टि से अनिष्टकारक जानकर छोड़ दिया जाए तो सारे दुःख दूर हो जाते हैं। इस प्रकार रोगों की व्यथा से बचने के लिए रसासक्ति से दूर रहना ही एकमात्र उपाय है। इसी विषय में आगे कहा है-

न ह्येकविषयेऽन्यत्र सज्जन्ते प्राणिनस्तथा।
अविज्ञाते यथाहारे बोद्धव्यं तत्र कारणम्।।१०।।

प्राणी दूसरे किसी एक विषय में उतना आसक्त नहीं होते हैं, जितना कि भोजन के विषय में, अर्थात् रसना की आसक्ति सबसे प्रबल होती है। कल्याणाभिलाषी को इसे समझना चाहिए तथा इस पर नियन्त्रण करना चाहिए।

चिकित्सार्थं यथा धत्ते व्रणस्यालेपनं व्रणी।
क्षुद्विघातार्थमाहारस्तद्वत् सेव्यो मुमुक्षुणा।।११।।

घायल व्यक्ति जैसे घाव की चिकित्सा के लिए मल्हम-पट्टी करता है, वैसे मुक्ति चाहने वाले साधक को भूख मिटाने के लिए भोजन का सेवन करना चाहिए। न कि आसक्तिपूर्वक रसनातृप्ति के लिए।

भारस्योद्वहनार्थं च रथाक्षोऽभ्यज्यते यथा।
भोजनं प्राणयात्रार्थं तद्वद्विद्वान्निषेवते।।१२।।

जैसे भार-वहन हेतु रथ की धुरी को दृढ़ करने के लिए तेल से अञ्जित (चिकना) किया जाता है, उसी प्रकार विद्वान् लोग प्राणयात्रा अर्थात् आवश्यक दैनन्दिन कार्यों को सम्यक् प्रकार से सम्पन्न करने हेतु सामर्थ्य पाने के लिए ही अन्न का सेवन करते हैं। राग या रसासक्ति के कारण से नहीं।

इस प्रकार मिताहार स्वास्थ्य का मूलमन्त्र है। इसे अपनाने से आरोग्य-लाभ के साथ योग-साधना में भी प्रगति होती है। यह अभ्युदय (लौकिक उन्नति) एवं निःश्रेयस (परम कल्याण), इन दोनों की सिद्धि में परम सहायक है।

आयुर्वेद में भोज्यान्न का एक आवश्यक गुण स्वादु होना भी बताया है। स्वादिष्ठ अन्न शीघ्र पचता है, इन्द्रियों को तृप्त करता है। बलवर्द्धक व वर्णप्रसादकर (रंग निखारने वाला) होता है। रुचिवधू-गल-रत्नमाला में नानाविध विचित्र स्वादु अन्नपान का वर्णन स्वास्थ्यवृद्धि की दृष्टि से ही किया गया है। इसमें वर्णित स्वादु व्यञ्जनों को भी मित मात्रा में ही खाना चाहिए। अन्यथा ये रुचिजनक होने की अपेक्षा अरुचि के कारण बन जाते हैं। क्योंकि कितना ही स्वादिष्ठ अन्न हो, यदि उसे भी अधिक मात्रा में खाया जाएगा तो उसके भी पूर्वोक्त दोष व दुष्परिणाम अवश्य होंगे। उत्तमोत्तम स्वादिष्ठ व्यञ्जन के सेवन में भी आयुर्वेद के इस सिद्धान्त का सदा ध्यान रखना चाहिए-

यथाग्न्यभ्यवहारोऽग्निसन्धुक्षणानाम्। (च. सं. सू.-२५.४०)

अर्थात् जठराग्नि की क्षमता के अनुसार भोजन करना ही क्षुधा बढ़ाने वाले उपायों में सर्वश्रेष्ठ है। सभी व्यञ्जन तभी लाभकर व सार्थक होते हैं, जब इस विशिष्ट नियम के अनुसार उनका मित मात्रा में सेवन किया जाता है। नीतिकार सोमदेव सूरि भी कहते हैं-

यो मितं भुङ्क्ते स बहु भुङ्क्ते।

(नीतिवाक्यामृतम्, दिवसानुष्ठान-समुद्देश-३८)

अर्थात् जो मित मात्रा में खाता है, वही वस्तुत: अधिक खाता है। क्योंकि उसका खाया अन्न पचकर शरीर का अंग बन जाता है। इसके विपरीत जो मात्रा से अधिक खाता है, उसका खाया हुआ सब व्यर्थ जाता है, अजीर्ण होने से रोगकारक बन जाता है। अत: मितभोजी ही बहुभोजी की अपेक्षा लाभ में रहता है।

लवण व शर्करा के अतिसेवन से हानियाँ

लवण व शर्करा के अतिसेवन से बचें-

व्यञ्जनों के प्रसंग में कुछ अन्य तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य हैं। प्राय: सभी व्यञ्जनों में लवण का प्रयोग होता है। आयुर्वेद में जहाँ लवण का निर्देश होता है, वहाँ सैन्धव लवण ही लिया जाता है। यह सभी लवणों में श्रेष्ठ, हितकर व भोजन में रुचिवर्द्धक तथा पाचक होता है।

इस प्रकार लवण षड्रस में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उचित मात्रा में प्रयुक्त लवण भोजन का आवश्यक अङ्ग माना जाता है। परन्तु लवण की मात्रा के विषय में विशेष सावधान रहना चाहिए। क्योंकि अन्य रसों की अपेक्षा इसका अतियोग अधिक घातक होता है। चरक-संहिता में षड्रस-विवेचन के प्रसङ्ग में पहले इसके गुणों व उपयोगिता का वर्णन किया है, तदनन्तर इसके अतिसेवन को बहुत ही हानिकर रूप में चित्रित किया है-

लवण के गुण

लवणो रस: पाचन: क्लेदनो दीपनश्च्यावनश्छेदनो भेदनस्तीक्ष्ण: सरो विकास्यध:स्रंस्यवकाशकरो वातहर: स्तम्भबन्धसङ्घातविधमन: सर्वरसप्रत्यनीकभूत:, आस्यमास्रावयति, कफं विष्यन्दयति, मार्गान् विशोधयति, सर्वशरीरावयवान् मृदूकरोति, रोचयत्याहारम्, आहार-योगी, नात्यर्थं गुरु: स्निग्ध उष्णश्च।

लवण रस पाचन (आहार को पचाने वाला) क्लेदन (आहार आदि में गीलापन लाने वाला), दीपन (जठराग्नि को दीप्त करने वाला), च्यावन (कफ व मल आदि को नीचे गिराने वाला), छेदन-भेदन (मलों का छेदन-भेदन करने वाला), सर (मलप्रवर्त्तक), विकासी, अध:स्रंसी, अवकाशकर, वातहर, स्तम्भ, बन्ध व संघात को नष्ट करने वाला सब रसों का विरोधी होता है। यह मुख में लालास्राव-कारक होता है। कफ को पिघलाता है, शरीर के

स्रोतों को शुद्ध करता है। शरीर के अवयवों को कोमल बनाता है। आहार में रुचि पैदा करता है, यह आहारयोगी (भोजन के साथ मिश्रित किया जाने वाला) द्रव्य है। लवण बहुत गुरु नहीं होता है। यह स्निग्ध व उष्ण होता है।

लवण के अतिसेवन से हानियाँ

स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपयुज्यमानः पित्तं कोपयति, रक्तं वर्धयति, तर्षयति, मूर्च्छयति, तापयति, दारयति, कुष्णाति मांसानि, प्रगालयति कुष्ठानि, विषं वर्धयति, शोफान् स्फोटयति, दन्तांश्च्यावयति, पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुणाद्धि, वलिपलितखालित्यमापादयति, अपि च लोहितपित्ताम्लपित्त-वीसर्प-वातररक्त-विचर्चिकेन्द्रलुप्त-प्रभृतीन् विकारानुपजनयति।

इस प्रकार के गुणों से युक्त होने पर भी लवण रस का ही अकेले रूप में और अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर यह पित्त को कुपित करता है। रक्त में गर्मी बढ़ाता है, प्यास लगाता है, मूर्च्छा लाता है, शरीर में सन्ताप बढ़ाता है, धातुओं का भेदन करता है। मांस को ढ़ीला करता है। कुष्ठ को बढ़ाता है। विष के असर को भी बढ़ा देता है। फोड़ों को पकाकर फोड़ता है। दाँतों को ढ़ीला कर गिराता है। पौरुष शक्ति (शुक्र) को नष्ट करता है। इन्द्रियों का उपरोध करता है। झुर्रियाँ, बालों का पकना व गंजापन पैदा करता है। इसके अति सेवन से रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका (पामा/खुजली), इन्द्रलुप्त (गंजापन) आदि रोग हो जाते हैं। अतः इसके अतिसेवन से विशेष सावधानी-पूर्वक बचना चाहिए।

चरकसंहिता विमानस्थान के प्रथम अध्याय में भी अतिमात्र लवण की हानि बताते हुए कहा है-

लवणं पुनरौष्ण्यतैक्ष्ण्योपपन्नम्, अनतिगुरु, तदत्यर्थमुपयुज्यमानं ग्लानि-शैथिल्य-दौर्बल्याभिनिर्वृत्तिकरं शरीरस्य भवति। ये ह्येनद्

ग्राम-नगर-निगम-जनपदाः सततमुपयुञ्जते, ते भूयिष्ठं ग्लास्नवः शिथिलमांस-शोणिता अपरिक्लेशसहाश्च भवन्ति। तद्यथा बाह्लीक-सौराष्ट्रिक-सैन्धव-सौवीरकाः; ते हि पयसाऽपि सह लवणमश्नन्ति।

लवण, उष्णता व तीक्ष्णता से युक्त होता है। यह अतिगुरु नहीं होता है। लवण का अतिमात्रा में प्रयोग करने से शरीर में ग्लानि (म्लानता), शैथिल्य (शिथिलता/मांस व अङ्गों में ढ़ीलापन) व दुर्बलता आती है। जिन ग्राम, नगर, निगम व जनपदों में लवण का अधिक उपयोग किया जाता है, वहाँ के लोग ग्लानियुक्त, शिथिल मांस वाले, क्लेश या श्रम को सहने में असमर्थ होते हैं। जैसे कि बाह्लीक (बलख निवासी), सौराष्ट्रिक (काठियावाड़ी), सैन्धव (सिन्धी), सौवीरक (सिन्ध तथा मद्र के मध्यवर्ती क्षेत्र के निवासी)। ये लोग दूध के साथ भी लवण खाते हैं।

येऽपीह भूमेरत्यूषरा देशास्तेष्वोषधिवीरुद्वनस्पति-वानस्पत्या न जायन्ते लवणोपहतत्वात्। तस्माल्लवणं नात्युपयुञ्जीत। ये ह्यतिलवणसात्म्याः पुरुषास्तेषामपि खालित्यपालित्यानि वलयश्चाकाले भवन्ति।।

(च.सं., विमानस्थान-१.१८)

भूमि पर जो ऊषर (नमकीन मिट्टी वाले) स्थान हैं, उनमें ओषधि, (यव, गोधूम, सौंफ, अजवायन आदि) वीरुत् (झाड़ियाँ, लताएं), वनस्पति (बिना फूल के सीधे फल देने वाले बड़, पीपल, गूलर आदि वृक्ष) व वानस्पत्य (फूल तथा फल वाले वृक्ष, आम नीम आदि) लवण के प्रभाव से पैदा ही नहीं हो पाते हैं। इसलिए लवण का अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति लवणसात्म्य (अधिक लवण खाने की आदत वाले) होते हैं। उन्हें गंजापन, बाल पकना व झुर्रियाँ पड़ना समय से पहले ही हो जाता है। यह सब अतिलवण-सेवन का ही दुष्प्रभाव है, अतः इससे बचना चाहिए।

लवण व शर्करा के अतिसेवन से हानियाँ

आज समाज में दो बड़े कष्टदायक रोग प्रचलित हैं। पहला उच्च रक्त चाप (हाई ब्लड प्रेशर) व दूसरा मधुमेह (शुगर)। पहला लवण के अतिसेवन से होता है तथा दूसरा शर्करा के अतिसेवन से। इसके पीछे जिह्वा की रसासक्ति ही मुख्य कारण है। भोजन-विषयक विवेक न रखने वाले व जिह्वा के दास बने नासमझ लोग ही इनके शिकार होते हैं।

शर्करा का अतिसेवन भी बहुत ही हानिकारक है। यह नाना रोगों व मोटापे का कारण है। आयुर्वेद में चेतावनी देते हुए स्पष्ट कहा है कि-

अतिमधुरमनलशमनं भुक्तमसात्म्यं न पुष्टये वपुषः।
अति लवणमचक्षुष्यं तीक्ष्णात्यम्लं जरा साक्षात्।।

(आयुर्वेदमहोदधि, वस्त्रवर्ग- १०)

अति मधुर भोजन जठराग्नि को शान्त कर देता है। यह शरीर के लिए सात्म्य व पुष्टिकारक नहीं होता है। अधिक लवणयुक्त भोजन नेत्रों के लिए अहितकर होता है। तीक्ष्ण (अतिमात्रा में तेज लाल मिर्च, हरी मिर्च व अन्य अति चटपटे पदार्थ) व अति अम्ल (इमली आदि अति खट्टे पदार्थ) साक्षात् जरा हैं- अर्थात् असमय में बुढापा लाने के लिए मुख्य कारण हैं। अत: अधिक नमक, अधिक तीखे व खट्टे पदार्थों से सावधानी-पूर्वक बचना चाहिए। कहा भी है-

आयुर्घृते गुडे रोगो मृत्युर्लीनो विदाहिषु।
आरोग्यं कटुतिक्तेषु बलं मांसे पयस्सु च।।

(कैयदेव-निघण्टु, विहारवर्ग- ३१०)

अर्थात् घी में आयु छिपी हुई है। गुड़ में रोग, विदाही अर्थात् जलन करने वाले चटपटे, तीक्ष्ण एवं अति खट्टे पदार्थों में मृत्यु छिपी रहती है। कटु, (अदरक, सोंठ, कालीमिर्च जैसे पाचन करने वाले) तथा तिक्त (गिलोय, करेला आदि कड़वे पदार्थों में) आरोग्य छिपा रहता है। दूध व मांस अर्थात् गुद्देदार फल एवं मेवे आदि में बल छिपा रहता है।

व्यायामशील/श्रमशील रहते हुए घी का सेवन विशेष रूप से दीर्घायुष्य-कारक, जठराग्नि-दीपन व नेत्रज्योति-वर्द्धक होता है। ध्यान रहे घृतयुक्त भोजन के ऊपर शीतल जल कदापि नहीं पीना चाहिए। आयुर्वेद में घृत वाले भोज्य के अनन्तर उष्ण जल पीने का ही विधान है। अन्यथा घृत का पाचन नहीं होता है। गुड़ में रोग छिपा हुआ है- इस कथन का भाव यह है कि नया गुड़ मन्दाग्नि-कारक, कृमिजनक व ज्वर आदि रोगों का कारण बनता है। आयुर्वेद में १ वर्ष से ३ वर्ष पुराने गुड़ को ही समुचित मात्रा में लेना लाभकर बताया है। नया गुड़ पूर्वोक्त रूप से हानिकर होने के कारण त्याज्य ही है। विदाही अर्थात् विपाक (पचने के समय) अम्लताजनक (एसिड पैदा करने वाले) अति तीक्ष्ण व अति खट्टे एवं तले हुए पदार्थ साक्षात् रोगकारक होते हैं। ऐसे पदार्थ गीता में राजसिक आहार के रूप में माने हैं तथा दुःख, शोक व रोगों के उत्पादक कहे गये हैं-

कट्वम्ललवणात्युष्ण-तीक्ष्ण-रूक्ष-विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।। (गीता-१७.९)

अर्थात् अति चरपरे, अति नमकीन, अति उष्ण, अति तीक्ष्ण (तीखे), अति रूक्ष तथा विदाही (जलन-कारक) आहार रजोगुणी लोगों को प्रिय होते हैं। ये आहार दुःख, शोक व रोगों के कारण होते हैं।

व्यञ्जनों के मुख्य घटक

(संक्षिप्त विवरण व सचित्र परिचय)

रुचिवधू-गल-रत्नमाला में वर्णित व्यञ्जनों के मुख्य घटक तथा संयोगी मसाले आदि का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इनमें से पहले मुख्य घटक द्रव्यों का परिचय दिया जा रहा है। यहाँ द्रव्य के सम्मुख कोष्ठक में उससे बने भोज्य या व्यञ्जन का नाम तथा उसकी पुस्तिका-गत संख्या लिखी है। व्यञ्जनों में सहयोगी द्रव्य या मुख्य द्रव्य के रूप में छाछ, दही व दूध भी प्रयुक्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त गुड़, मधु, शर्करा, तेल, घी व तिलकल्क इत्यादि सहयोगी द्रव्यों का भी प्रयोग हुआ है।

षष्टिक (साठी चावल), लोहित शालि- (ओदन-१, पायस-४), प्रस्तुत पुस्तिका में पायस (खीर) व ओदन का वर्णन हुआ है। इसके लिए प्राय: षष्टिक अथवा लोहितशालि का प्रयोग किया जाता है। ये दोनों ही धान्यों में उत्तम माने जाते हैं। षष्टिक शीतल, रुचिकर, दोषहर, बल्य, पथ्य व दीपन होता है। लोहित शालि मधुर, स्निग्ध, बलकारक, रुचिकर, दीपन माना जाता है। यह पित्तदाह एवं वात को शान्त करता है। इनसे बनाई गई खीर विशेष रूप से पौष्टिक, बलवर्द्धक एवं वातपित्त-शामक होती है।

मूँग- (मुद्गदाली-२, मूँग के पर्पट-३८), मूँग रूक्ष, लघु, ग्राही, कफपित्तहर व शीतल होता है। यह ज्वरघ्न तथा नेत्रों के लिए हितकारी होता है।

गोधूम- (गोधूम मण्डक-७, आश्चर्य वटक-१७), संस्कृत में गेहूँ को ही गोधूम कहते हैं। यह गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, वातपित्त-शामक, सन्धानकर, जीवनीय, बृंहण, वृष्य, सर तथा स्थैर्यकारक होता है।

माष (उड़द)- (माषेण्डरी-११, माषपिण्ड-१२, घोलवटक-१५, आश्चर्य वटक-१६, चिञ्चावटक-१७, राजिका वटक-१८, आलवटक-१९), उड़द

गुरु, स्निग्ध, रुचिकर, वातहर, तर्पण, बल्य, व बृंहण होता है। उड़द का उपयोग अनेक व्यञ्जनों में बताया है। इसकी पिट्ठी से बड़े बनाए जाते हैं। इन्हें तक्र, दही या इमली के रस में डुबोया जाता है। इसी आधार पर इनका नाम तक्रवटक आदि के रूप में प्रसिद्ध होता है। तक्र आदि में डालने से ये फूलकर कोमल हो जाते हैं।

सूरणकन्द (जमीकन्द)- (सूरणकन्द व्यञ्जन- १४, १५, ५७), यह कन्दशाकों में श्रेष्ठ माना जाता है तथा जठराग्नि-दीपन होता है। अर्शरोग-निवारणार्थ पथ्य के रूप में इसका सेवन किया जाता है।

पटोल फल (परवल)- (पटोल फल व्यञ्जन-२०,२७, ४९), परवल लघु, स्निग्ध, उष्ण, दीपन-पाचन, हृद्य तथा वृष्य होता है। यह कास, ज्वर, कृमि तथा वात-पित्त एवं कफ के विकारों को दूर करता है।

कोशातकी (तोरी)- (कोशातकी व्यञ्जन- २१, २७, ४७), कोशातकी का शाक मधुर, शीत, अनुलोमन और पित्तशामक होता है।

वार्त्ताक (बैंगन)- (वार्त्ताक व्यञ्जन- २२, २७, २८, ४२, ५१), बैंगन मधुर, लघु, उष्ण, कफपित्तवर्द्धक एवं दीपन होता है। कच्चा बैंगन त्रिदोषहर, मध्यम पित्तकारक तथा पका हुआ कठोर बैंगन वातवर्धक होता है। आग पर भुना बैंगन अति लघु, कफवात-शामक, मेदोहर तथा दीपन होता है। तेल आदि में पकाने पर यह कुछ भारी हो जाता है।

निष्पाव शिम्बी (सेम की फली)- (सेम की फली का व्यञ्जन-२३, ४८), यह निष्पाव, वल्ल तथा सेम इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है। यह भारत में प्राय: सर्वत्र सब्जी के रूप में उगाया जाता है। निष्पाव गुरु, रूक्ष, सर, कषाय, उष्णवीर्य, वातवर्द्धक एवं विबन्धकारक होता है।

बिम्बी फल (कुन्दरू)- (बिम्बी फल का व्यञ्जन-२४, २७, ५३, ९३), बिम्बी फल मधुर, गुरु, शीतवीर्य, वात-पित्तहर व रुचिकर होता है।

कदलीकन्द- (कदलीकन्द व्यञ्जन- २५), केले की जड़ में मिलने वाला कन्द भी व्यञ्जनोपयोगी होता है। यह शीतल, मधुर तथा बल्य होता है। यह अम्लपित्त एवं दाह (जलन) में विशेष रूप से पथ्य होता है।

कदलीपुष्प (रम्भाकुसुम/केले के फूल)- (रम्भाकुसुम व्यञ्जन-३६), कदलीपुष्प मधुर, कषाय, गुरु, स्निग्ध तथा वातपित्त-शामक होते हैं। ये रक्तपित्त व क्षयरोग में पथ्य माने जाते हैं। मसालों के साथ बनाया इनका व्यञ्जन रुचिकर व जठराग्नि-दीपन होता है।

कदलीफल (केला)- (कदलीफल व्यञ्जन- २६, ६९, ७०), इसके कच्चे फलों का शाक हेतु प्रयोग किया जाता है। कच्चा केला कषाय, शीतवीर्य, गुरु तथा स्तम्भन होता है। यह रक्तपित्त और अतिसार में विशेष रूप से लाभदायक होता है।

कदलीगर्भदण्ड (केले के तने के अन्दर का कोमल भाग)- (कदलीगर्भदण्ड व्यञ्जन- ७५), कदलीगर्भदण्ड कषाय, शीतवीर्य, गुरु तथा स्तम्भन होता है। यह रक्तपित्त और अतिसार में विशेष रूप से लाभदायक होता है।

कारवेल्ल (करेला)- (करेले का व्यञ्जन-२९), करेले का फल लघु, तिक्त, उष्णवीर्य, अग्निदीपन एवं कफपित्त-शामक होता है; परन्तु उष्ण गुण के कारण वातवर्धक नहीं होता है। करेला ज्वर, प्रमेह, पित्तविकार, रक्तविकार, कृमि, एवं कास-श्वास आदि में विशेष रूप से लाभदायक होता है।

कूष्माण्ड (पेठा)- (पेठे का व्यञ्जन-२७, ३०, ३५, ६६), यह कच्ची अवस्था में पित्तशामक, मध्यम अवस्था में कफकारक तथा पक्व होने पर लघु, क्षारीय और उष्ण गुण वाला हो जाता है। कूष्माण्ड सर्वदोषहर, मूत्रल, सारक, हृद्य तथा रक्तपित्तहर होता है। यह अपस्मार आदि मानसिक विकारों में अतीव लाभदायक माना जाता है। वल्लीफलों (बेल पर लगने वाले फलों) में यह सर्वोत्तम कहा गया है।

कर्कोटकी फल (ककोड़ा)- (कर्कोटकी फल व्यञ्जन-३१), कर्कोटकी के

फल रुचिकर, कुछ तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य और कफवात-शामक होते हैं। ये दीपन, अनुलोमन तथा रक्तशोधक होते हैं। ज्वर, कास, श्वास कुष्ठ, प्रमेह में ये लाभदायक माने जाते हैं।

बथुआ- (बथुआ का व्यञ्जन-३२), यह वास्तुक, क्षारपत्र, यवशाक आदि नामों से जाना जाता है। बथुआ मधुर, क्षारयुक्त, कटु, लघु, पाचक, हृदय के लिए हितकारक तथा मेधा (स्मरण शक्ति बढ़ाने वाला) होता है। यह पत्र शाकों में बहुत उत्तम माना जाता है।

चौलाई- (चौलाई का व्यञ्जन-३३, ४३), इसे तण्डुलीय, मेघनाद, मेघराव इत्यादि नामों से जाना जाता है। यह शीतल, रूक्ष, रस एवं विपाक में मधुर, पित्तहर, रक्तपित्त-निवारक व दीपन होता है।

कासमर्द- (कासमर्द-व्यञ्जन- ३४), यह कासमर्द, कासारि, कसौंदी इत्यादि नामों से जाना जाता है। २-४ फीट की उंचाई वाला इसका क्षुप वर्षा ऋतु में होता है। यह रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, मधुर, कटुविपाक एवं उष्णवीर्य होता है। कासमर्द कफवात-शामक, दीपन, वातानुलोमन, पित्तसारक एवं रेचन होता है।

अगस्त्य फल- (मुनिवृक्ष फल व्यञ्जन- ३७, १०९), अगस्त्यवृक्ष (मुनिवृक्ष) का फल मधुर, तिक्त व रूक्ष होता है। यह कफहर, शूलप्रशमन, प्लीहा, पाण्डु व गुल्म रोग में लाभदायक तथा पित्तवर्धक होता है।

कर्चरी (कचरी)- (कचरी का व्यञ्जन -४०), कचरी के अण्डाकार कच्चे फलों के टुकड़े काट कर सुखा लिए जाते हैं। ये स्वाद में कुछ तिक्त एवं अम्ल होते हैं। शाक व चटनी आदि व्यञ्जनों में इनका उपयोग किया जाता है।

धात्री/आमलक- (आंवले का व्यञ्जन- ४१, ९२), आंवले में लवण को छोड़कर शेष पाँचों रस होते हैं। यह एक ऐसा फल है, जो दिव्य औषधीय एवं स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों से भरपूर है। आँवला मधुरविपाक एवं त्रिदोषशामक होता है। विशेषतः पित्तशामक होता है। यह प्रमेहनाशक व रसायन है तथा

अम्ल फलों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। आँवला अम्लपित्त, रक्तपित्त, परिणामशूल, प्रमेह तथा दुर्बलता को दूर करने के लिए अमृत तुल्य होता है। प्रस्तुत पुस्तिका में कतिपय उपस्करों के साथ आँवलें के स्वादिष्ठ एवं रुचिकर व्यञ्जनों का वर्णन हुआ है।

कुटजपुष्प- (कुटजपुष्प का व्यञ्जन- ४४), कुटज के पुष्प तिक्त, कषाय, लघु, शीतवीर्य, दीपन एवं वातवर्धक होते हैं। ये कफपित्त, रक्तविकार, कुष्ठ, अतिसार और कृमियों के नाशक होते हैं।

कुटजफल/गिरिमल्लिकाफल- (गिरिमल्लिका फल व्यञ्जन-५२, कुटज शिम्बी व्यञ्जन-९४), कुटज की फली कषायकटु, शीतवीर्य, रूक्ष, अग्निदीपन होता है। यह कफपित्त, रक्तविकार, कुष्ठ, कृमि, आमदोष, और अतिसार को दूर करती है।

आम्रपल्लव- (आम्रपल्लव व्यञ्जन-४५), आम्र के पल्लव (कोंपल) कफ-पित्तनाशक एवं रुचिकारक होते हैं।

कोलशिम्बी/काकाण्डोलाफल- (कोलशिम्बी-व्यञ्जन-४६) कोलशिम्बी मधुररस, वातनाशक, कफपित्तवर्धक, रुचिकारक होती है। इसका फल कफकारक, वातपित्तनाशक, हृद्य, रुचिकर व गुरु होता है।

पिष्टफल- इस नाम से निघण्टुओं में कोई फल वर्णित नहीं है। पुस्तिका में वर्णित व्यञ्जन संख्या-५० में पिष्टफल शब्द पेठे के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि पेठे का स्वरूप पकाने पर पिष्ट (आटे) जैसा हो जाता है। ध्वनिसाम्य से भी पेठा शब्द पिष्ट से रूपान्तरित हुआ प्रतीत होता है।

वाष्पी (बाफली)- (वाष्पी-व्यञ्जन-५४), वाष्पिका कटु, तिक्त, हृद्य, तीक्ष्ण, आम-पाचन, उष्णवीर्य होती है। यह अर्श, हृदयशूल, वस्तिशूल, गुल्म, प्लीहारोग, कृमि, विबन्ध, अरुचि, मेदोरोग, विष व कफ को दूर करती है।

निम्बपत्र- (निम्बपत्र व्यञ्जन- ५५), नीम की कोमल कच्ची पत्तियों के द्वारा बनाए जाने वाले एक व्यञ्जन का इस पुस्तिका में वर्णन हुआ है। नीम के

कोमल पत्ते कफपित्त-शामक तथा कुष्ठनाशक होते हैं। ये छर्दि, व्रण तथा रक्तविकार में बहुत लाभदायक होते हैं। निम्बपत्रों में तिक्त रस होता है तथा तिक्त रस की यह विशेषता है कि वह स्वयं अरुचिकर होते हुए भी ऐसा प्रभाव करता है, जिससे अन्न में रुचि पैदा हो जाती है।

अरणीपत्र- (अरणीपत्र व्यञ्जन- ५६), यह कटु, तिक्त, कषाय, जठराग्नि-दीपन व उष्णवीर्य होता है। यह वातकफ-नाशक एवं पाण्डुरोगहर होता है।

सारिवा फल- (सारिवा फल व्यञ्जन- ५८), सारिवा फल मधुर, तिक्त, स्निग्ध, शुक्रल व शीतल होता है। यह ज्वर, अतिसार, आमदोष, मन्दाग्नि व अरुचि को दूर करता है। श्वासकासहर एवं त्रिदोषशामक होता है।

बृहतीफल (बड़ा व छोटा)- (बृहतीफल व्यञ्जन- ५९, १०१), दोनों बृहती फल रस एवं विपाक में कटु, मल का भेदन करने वाले, रुचिकारक, हृद्य, पित्तकर, अग्निवर्धक और लघु होते हैं।

नारंगकेसर (सन्तरा की कलियां)- (नारंगकेसर का व्यञ्जन- ६१), संस्कृत में सन्तरे को नारंग व नागरंग भी कहते हैं। इसका फल हृद्य, रोचन, तथा वातशामक होता है। अन्न में रुचि पैदा करना इसका विशेष गुण है। नारंगी की छिल्का रहित कलियों में कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर सेवन अति रुचिकारक व अग्नि-दीपन कहा गया है।

जम्बीरकेसर- (जम्बीर-केसर व्यञ्जन- ६२), जम्बीरी निम्बू अम्ल, गुरु, उष्णवीर्य, वातकफ-नाशक, सारक एवं दीपन-पाचन होता है। अग्निमान्द्य, शूल, कृमि और छर्दि आदि विकारों में यह विशेष रूप से लाभकर होता है। अनेक व्यञ्जनों में इसका प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत पुस्तिका में जम्बीर के केसर (अन्दर के रसदार रेशे) के व्यञ्जन का वर्णन हुआ है।

बीजपूरकेसर- (बीजपूरकेसर व्यञ्जन- ६४), इसे मातुलुंग (बिजोरा निम्बू) नाम से जाना जाता है। बीजपूर दीपन, पाचन, रोचन, सर तथा हृद्य होता है। यह शूल, गुल्म, छर्दि, अजीर्ण एवं अर्श आदि रोगों में विशेष लाभकर होता

है। अनेक व्यञ्जनों में इसका उपयोग हुआ है।

तिलकल्क- (तिलकल्क का व्यञ्जन-६३), तिल कषाय, मधुर, तिक्त, कटुविपाक, स्वादिष्ठ, स्निग्ध, बलकारक व गुरु होता है। यह त्वचा, वर्ण एवं केशों के लिए हितकर, जठराग्निवर्धक एवं कफपित्तकारक होता है।

आम्रातक- (आम्रातक व्यञ्जन- ६५,१०७), आम्रातक (आमड़ा) अम्लरस युक्त वातनाशक, रुचिकारक, गुरु, उष्ण और कफपित्तकारक होता है। इसका पका फल मधुर, शीतल, सन्तर्पण, स्निग्ध व गुरु होता है।

मूलक (मूली)- (कच्ची मूली का व्यञ्जन- ६७), कच्ची मूली लघु, त्रिदोषशामक एवं दीपन-पाचन होती है। विकसित व प्रौढ मूली गुरु व त्रिदोष-प्रकोपक होती है। अत: इस पुस्तिका में कच्ची मूली के रुचिकर व्यञ्जन का वर्णन किया गया है।

एर्वारु (ककड़ी)- (एर्वारु व्यञ्जन-२७, ७१, ७२) इसे संस्कृत में कर्कटी भी कहते हैं। कच्ची ककड़ी रूक्ष, मधुर, शीतवीर्य, रुचिकारक, मूत्रकृच्छ्रहर, ग्राही व वातकफ-कारक होती है। पकी ककड़ी उष्णवीर्य, तृषा, क्लम व दाह को दूर करती है तथा अग्नि व पित्त को बढ़ाती है।

चणकपत्र (चने के पत्ते)- (चणकपत्र व्यञ्जन-७३), चने के पौधे की ग्रन्थि के रोमों से एक अम्ल तीक्ष्ण द्रव का स्राव होता है। जिसे चणकाम्ल कहते हैं। हरे चने तथा चने के पौधे की कोमल कच्ची पत्तियों का शाक बनता है। इससे रायता भी बनाया जाता है तथा कढ़ी में भी चने के पत्ते डाले जाते हैं। चने के पत्तों से बना शाक या व्यञ्जन मधुराम्ल एवं मधुरविपाक होता है। यह रुचिकारक, पित्तशामक तथा दन्तशोथ-निवारक होता है।

वालुक फल (कर्कटी विशेष)- (वालुक फल व्यञ्जन- ७४), वालुक मधुर एवं तिक्त रस युक्त, रुचिकारक, रूक्ष, शीतल, गुरु, मलभेदक, विष्टम्भी, अभिष्यन्दी, रक्तपित्त-निवारक तथा मूत्रल होता है। इसका पका फल क्षारयुक्त, हृद्य, अग्निदीपन, लघु व कफनाशक होता है।

वंशांकुर- (वंशांकुर व्यञ्जन- ७६, ९७), बांस के करीर (नए अंकुरों) का भी व्यञ्जन बनता है। वंशांकुर मधुर, कषाय किन्तु विदाही होते हैं। ये गुरु, रूक्ष तथा कफ-वातकोपन माने जाते हैं। उपस्करों के साथ तैयार करने से इसके व्यञ्जन में कफवात-कारकता नहीं रहती है।

आम्रमञ्जरी (आम का बौर)- (आम्रमञ्जरी व्यञ्जन- ७७, १०४, ११०), आम्रमञ्जरी शीतल, रुचिकर, एवं ग्राही होती है। दक्षिण भारत में इसके व्यञ्जन बनाने का प्रचलन है।

आम्रफल (कच्चा)- (आम्रपानक - ८१, ११२, ११३)

आम्रफल (पका हुआ)- (आम्रफल का व्यञ्जन- २५, १११)

आम्र (आम) के कच्चे व पके दोनों प्रकार के फलों के व्यञ्जन का वर्णन प्रस्तुत पुस्तिका में किया गया है। कच्चा आम रूक्ष, कषाय, कटु व अम्लरस तथा वातपित्तकारक होता है। उपस्करों के साथ सिद्ध किया इसका व्यञ्जन दीपन-पाचन व रुचिकारक होता है। पका आम मधुर, अम्ल एवं कषाय अनुरसयुक्त होता है। यह गुरु, स्निग्ध, वातनाशक व रुचिकारक होता है।

करमर्दक (करौंदा)- (करमर्दक का व्यञ्जन- ८२), करमर्दक का कच्चा फल अम्ल, रुचिकर, तृषाहर व रक्तपित्त-कारक तथा कफप्रद होता है।

बिल्व (बेल)- (बिम्बीबिल्व व्यञ्जन- ९३), बिल्व (बेल) के कच्चे फल का प्रयोग औषध में तथा पके फल का प्रयोग खाने में होता है। कच्चा बिल्व फल उष्ण, तीक्ष्ण, दीपन, संग्राही तथा कफवात-शामक होता है। पका हुआ बिल्व गुरु, विष्टम्भी तथा कोष्ठवातवर्द्धक होता है।

श्योनाक (सोनापाठा)- (श्योनाक व्यञ्जन- ९६) श्योनाक का कच्चा फल रूक्ष, कफवातशामक, हृद्य, कषाय-मधुर, रोचन, लघु एवं दीपन होता है। पका फल गुरु तथा वातप्रकोपक होता है।

शिग्रु/शोभाञ्जन (सहजन)- (शिग्रुमूल व्यञ्जन- ९९), इस वृक्ष की फलियों

का शाक बनता है, परन्तु प्रस्तुत पुस्तिका में इसकी जड़ का व्यञ्जन वर्णित है। शिग्रु कुछ तिक्त एवं कटुरस युक्त तथा उष्णवीर्य होती हैं। यह लघु, अग्निदीपन, रोचन व संग्राही होता है। शिग्रुमूल के विषय में कहा है-

शिग्रुमूलं तु वातघ्नं श्रेष्ठमर्शोविनाशनम्।
शमनं स्नायुरोगस्य पित्तकृत्कफनाशनम्।। (क्षेमकुतूहल-११.२६)

अर्थात् शिग्रुमूल वातनाशक तथा अर्शरोग-निवारक है। यह स्नायुरोग-नाशक, पित्तकर व कफहर होता है।

राजशेलुफल/श्लेष्मातक- (राजशेलु फल का व्यञ्जन- १०२), इसे हिन्दी में लिसोड़ा कहते हैं। यह बड़ा व छोटा दो प्रकार का होता है। प्रस्तुत पुस्तिका में बड़े लिसोड़े के व्यञ्जन का वर्णन है। व्यञ्जन में इसके कच्चे फल का प्रयोग किया जाता है। लिसोड़े का पका फल मधुर, कफकारक, गुरु तथा शीतल होता है। कच्चा फल रूक्ष, विष्टम्भी तथा कफपित्तशामक होता है। उपस्करों (मसालों) के साथ तैयार किया गया इसका व्यञ्जन दीपन, पाचन व रुचिवर्द्धक होता है।

कोल फल (बदर/बेर)- (कोल फल (बेर) का व्यञ्जन-१०६), कोल फल (बेर) के कच्चे खट्टे फल कफपित्त-वर्धक होते हैं; परन्तु पकने पर ये मधुर एवं वातपित्त-शामक होते हैं। बेर स्निग्ध व भेदन होता है।

नारिकेल (नारियल)- तण्डुलवार्त्ताक-व्यञ्जन (व्यञ्जन संख्या-२८) में तण्डुल के साथ नारियल का उपयोग भी बताया है। नारियल गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य एवं पित्तशामक होता है। दक्षिण भारत में नारियल से नाना प्रकार के व्यञ्जन बनाए जाते हैं।

दाडिम (अनार)- यह दो प्रकार का होता है खट्टा व मीठा। मीठा अनार त्रिदोषहर, दीपन, हृद्य व ग्राही होता है। खट्टा अनार पित्तवर्धक व दीपन होता है। काबुली अनार सर्वोत्तम माना जाता है। अनार का दीपन द्रव्य के

रूप में अनेक व्यञ्जनों में प्रयोग होता है। यह फलों में बहुत ही उत्तम एवं स्वास्थ्यवर्द्धक माना जाता है।

दूध-(पायस-४, क्षीरसार-८, गोलकदुग्ध-९), दूध व इससे बनने वाले दही, तक्र आदि का भी अनेक व्यञ्जनों में मुख्य घटक के रूप में उपयोग बताया है। ये सभी पौष्टिक रुचिकारक व बलवर्द्धक होते हैं। इनमें दूध मूल द्रव्य है। दुग्ध मधुर, शीतल, बलबर्धक, वातपित्तशामक, चक्षुष्य, बृंहण व वृष्य होता है।

दही- (दही अदरक का व्यञ्जन- ६८, रसाला- ८४), दही दीपन, ग्राही, अभिष्यन्दी, गुरु एवं उष्णवीर्य होता है। यह अरुचि, प्रतिश्याय, कास, मूत्रकृच्छ, कृशता एवं वातविकार को दूर करता है तथा विशेष रूप से रुचिकर होता है। दही से बनी रसाला (शिखरिणी/श्रीखण्ड) बलवर्द्धक व पौष्टिक होती है। यह वातपित्त-शामक, बृंहण, वृष्य, स्निग्ध तथा शीतल एवं रुचिकर होती है।

तक्र- (तक्रकाञ्जी- ८३, पाचनकारी तक्र- ८५, ८६, ८७, ८८, ८९), तक्र रस में मधुर, कषाय एवं अम्ल होता है। यह लघु, ग्राही, दीपन, उष्णवीर्य, विपाक में मधुर व हृद्य होता है। तक्र कामला, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, पाण्डु, ग्रहणी, अतिसार व उदररोगों में विशेष लाभदायक होता है। इसका उपयोग अनेक व्यञ्जनों में बताया गया है।

घृत- घृत का उपयोग व्यञ्जनों को संस्कारित करने के लिए तेल के विकल्प के रूप में किया जाता है। पूर्वी भारत में तेल तथा पश्चिमी भारत में घृत से व्यञ्जनों को संस्कारित करने का प्रचलन रहा है। आयुर्वेद में जहाँ बिना विशेषण के केवल घृत का निर्देश होता है वहाँ गोघृत लिया जाता है। घृत मधुर, चक्षुष्य, अग्निदीपन, पित्तवात-शामक, शीतवीर्य, मेध्य व आयुष्य होता है। यह स्नेहों में सर्वोत्तम माना जाता है।

तेल- आयुर्वेद अथवा पाकशास्त्र में जहाँ बिना विशेषण के केवल तेल का निर्देश होता है वहाँ तिल का तेल लिया जाता है। तेलों में यही सर्वोत्तम माना

जाता है। शाक, व्यञ्जन आदि के संस्कार में इसे ही अन्य तेलों की अपेक्षा उपादेय माना गया है। तिल का तेल वातहर, गुरु, स्थैर्यकर, बलवर्द्धक, वर्णप्रसाद-कारक, उष्णवीर्य एवं दीपन होता है।

यह ध्यान रहे कि तेल में तली गेहूँ के आटे की पूरी आदि से नेत्रज्योति क्षीण होती है। तेल में पके भोज्य त्वचा की रंगत मलिन कर देते है तथा विदाही एवं पित्तवर्धक होते हैं। ये तथ्य निम्न श्लोकों में उल्लिखित हैं, अतः भोज्यद्रव्यों में तेल के अधिक प्रयोग के विषय में सावधान रहें-

गुड-गोधूम-सम्मिश्रतैल-पक्वान्नभक्षणात्।
करोति पित्तं श्लेष्माणं चक्षुर्मारुतनाशनम्।।
विदाहिनस्तैलकृता गुरवः कटुपाकिनः।
उष्णा मारुतदृष्टिघ्नाः पित्तलास्त्वक्प्रदूषणाः।। (भोजनकुतूहल, पृ.८०)

गेहूँ तथा गुड़ मिले व तेल के पके अन्न का सेवन पित्त व कफ को बढ़ाता है। यह वातनाशक होता है, किन्तु नेत्रदृष्टि को क्षीण करता है। तेल में पके भोज्य पदार्थ विदाही, गुरु व पाक में कटु होते हैं। ये उष्ण, वातनाशक, दृष्टिनाशक, पित्तवर्धक व त्वचा को दूषित करने वाले (त्वचा को बदरंग या मलिन करने वाले) होते हैं।

शर्करा- कुछ व्यञ्जनों व पानकों में शर्करा का मिश्रण किया जाता है। यह मधुर, शीतल, बलवर्द्धक एवं पित्तशामक होती है। इसके उचित मात्रा में मिश्रण से व्यञ्जन व पानक स्वादु एवं रुचिकर बनते हैं।

गुड़- कहीं-कहीं व्यञ्जनों में गुड़ का भी प्रयोग होता है। प्रस्तुत पुस्तिका में चिञ्चावटक (व्यञ्जन संख्या-१७) में गुड़ का मिश्रण निर्दिष्ट है। गुड़ मधुर, बलवर्द्धक एवं व्यञ्जनों को रुचिकर बनाने वाला है। आयुर्वेद के निर्देशानुसार १ वर्ष से ३ वर्ष तक पुराने गुड़ का ही उपयोग करना चाहिए। नया गुड़ हानिकारक होता है।

मुद्ग (मूंग)
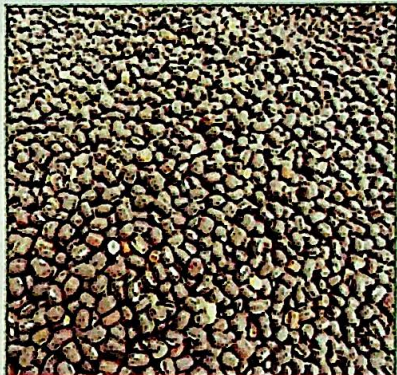
माष (उड़द)

सूरण कन्द

पटोल फल (परवल)

कोशातकी (तोरी)

वार्ताक (बैंगन)
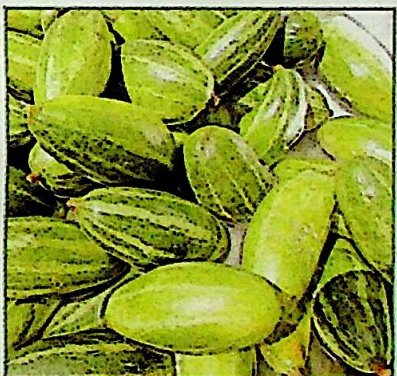
निष्पाव (सेम)
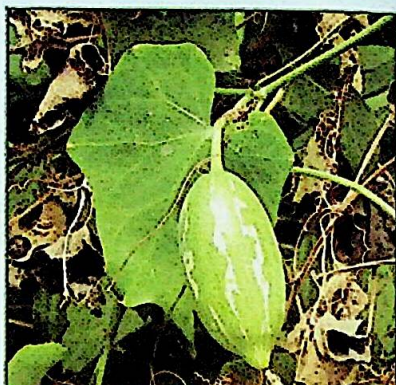
बिम्बी फल (कुन्दरू)
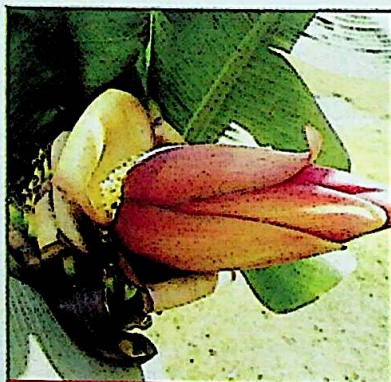
कदलीपुष्प (केले का फूल)
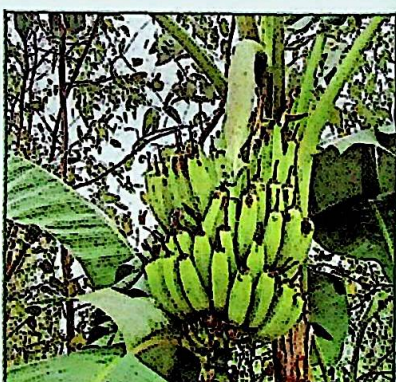
कदली फल (केला)
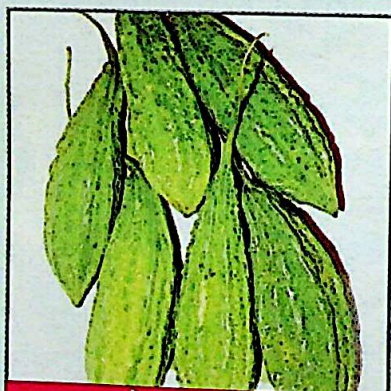
कारवेल्ल (करेला)
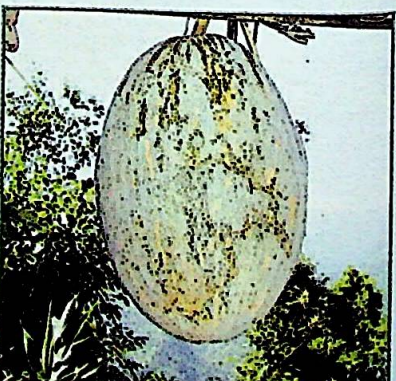
कूष्माण्ड

कर्कोटकी फल (ककोड़ा)

वास्तुक (बथुआ)

कासमर्द (कसौंदी)

अगस्त्य वृक्ष (मुनि वृक्ष)

कर्चरी (कचरी)

आमलकी (आंवला)

व्यञ्जनों के मुख्य घटक
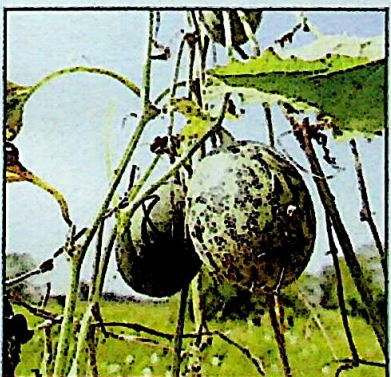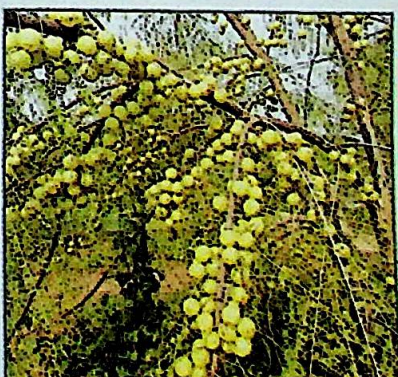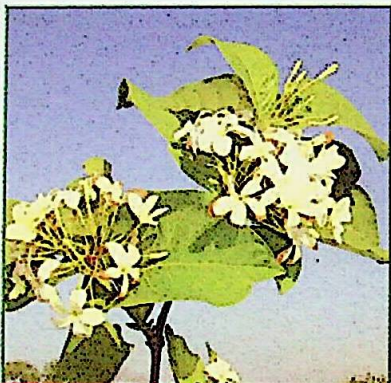
कुटजपुष्प

कुटज की फली

आम्रपल्लव व आम्रमञ्जरी

कोलशिम्बी (सुअरा सेम)
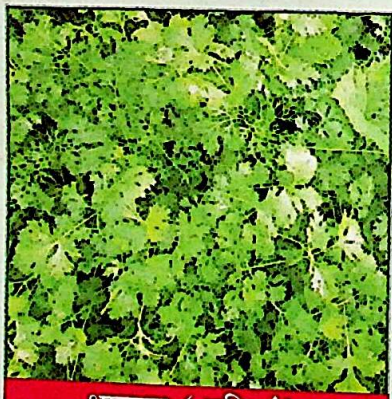
धान्यक (धनियां)
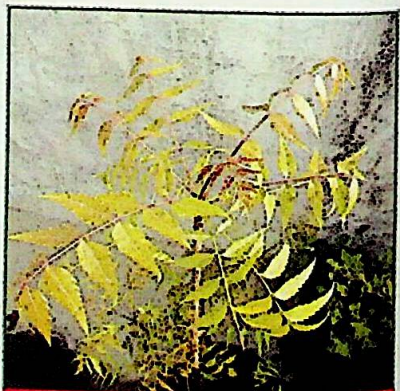
निम्बपत्र (नीम के पत्ते)
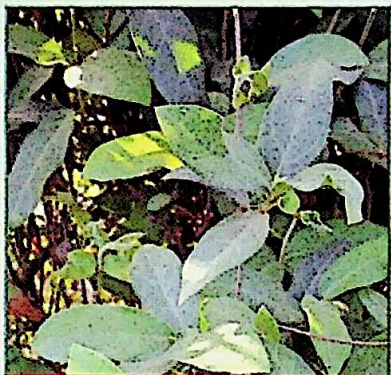
सारिवा (अनन्तमूल)
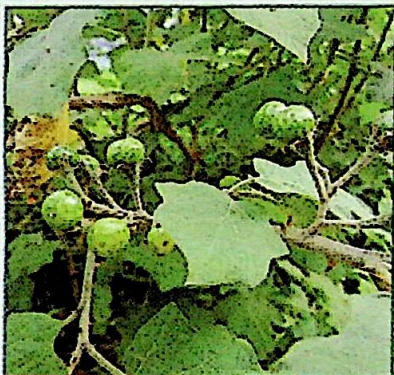
बृहतीफल (कण्टकारी)

नागकेशर
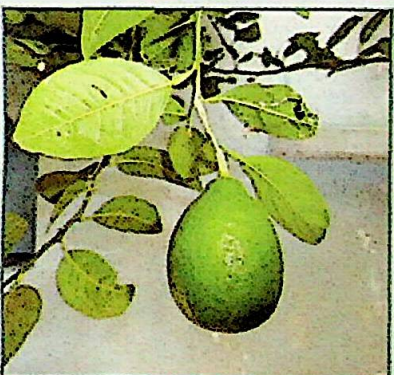
जम्बीरी निम्बू

बिजौरा नींबू

तिल
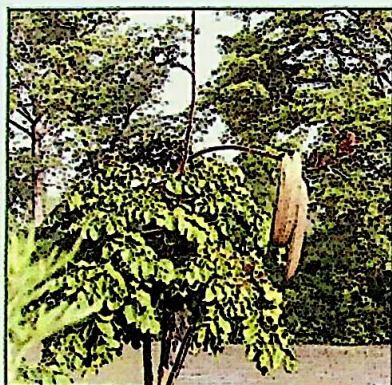
श्योनाक (सोनापाठा)
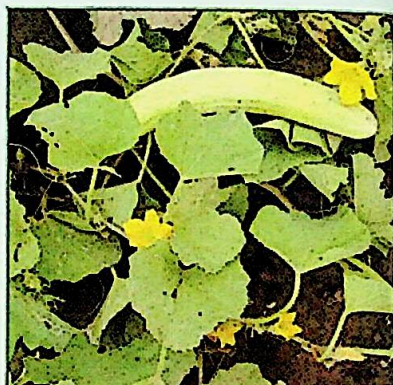
कर्कटी (ककड़ी)

चणकपत्र (चने के पत्ते)
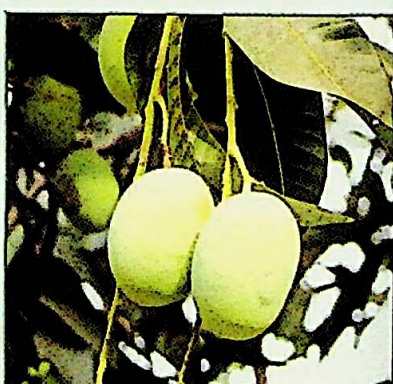
आम्रफल (आम)
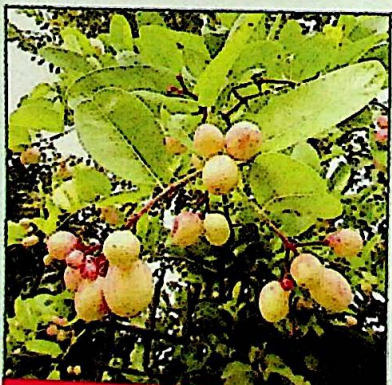
करमर्द (करौंदा)
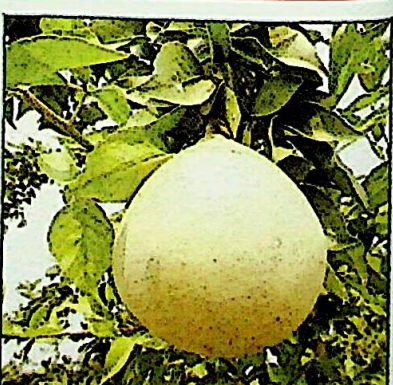
बिल्व फल (बेल)
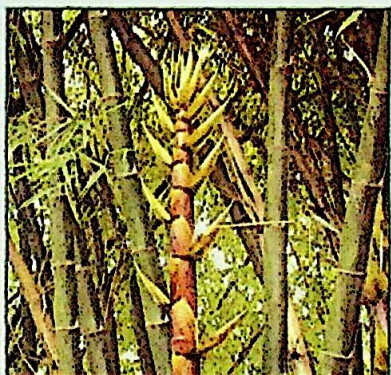
वंशांकुर (बांस के अंकुर)
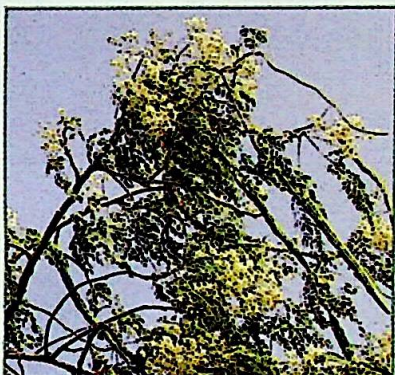
शिग्रु (सहीजन)
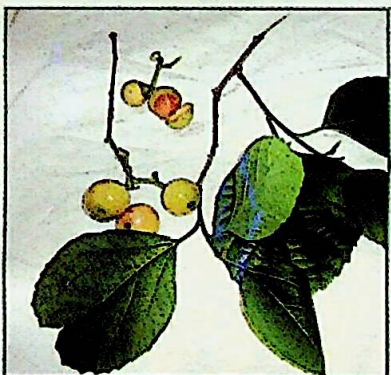
राजशेलु फल (बड़ा लिसोड़ा)

कोल फल (बेर)
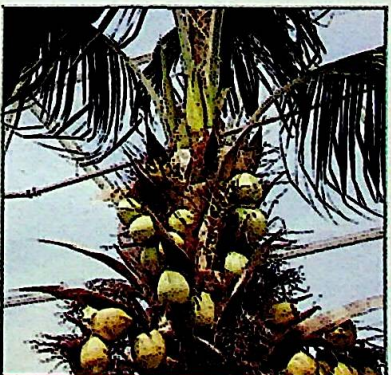
नारिकेल (नारियल)

दाडिम (अनार)

तण्डुलीय (चौलाई)
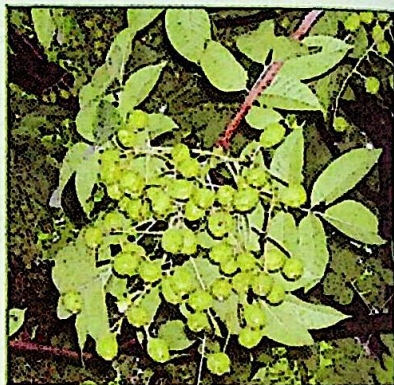
आम्रातक (आमड़ा)

अरणी पत्र

मूली

नारंग केसर
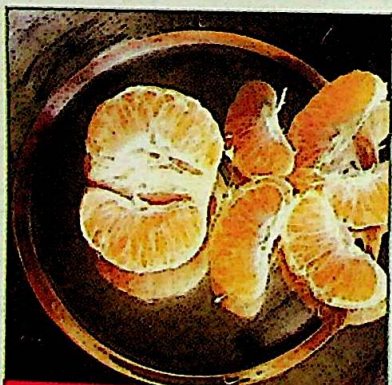
बाफली

व्यञ्जनों में प्रयुक्त उपस्कर (मसाले)

(संक्षिप्त विवरण व सचित्र परिचय)

व्यञ्जनों में प्रयुक्त किए गए कुछ परिगणित उपस्कर (मसाले) हैं, ये इस प्रकार हैं- हींग, धनियाँ, जीरा, हल्दी, राई, कालीमिर्च, अदरक, सोंठ, सैन्धव लवण, सौवर्चल लवण, मरिचमञ्जरी (हरी मिर्च), इलायची, निम्बू, इमली, काञ्जी, धान्याम्ल, क्षार, सज्जीखार, वेसवार, आम्रचूर्ण (अमचूर), मल्ली, चम्पक, केतकी, चतुर्जातक आदि। ताम्बूल (पान) में मिलाए जाने वाले मसाले के रूप में चन्दन, कपूर, अगरु, पूगीफल (सुपारी), चूना, कत्था (खदिरसार) आदि प्रयुक्त हैं।

थोड़े परिवर्तन या न्यूनाधिक रूप में ये ही प्राय: सभी व्यञ्जनों में प्रयुक्त किए गए हैं। यहाँ इन उपस्करों (मसालों) का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है-

हींग- हिङ्गु, सहस्रवेधि, रामठ, बाह्लीक आदि नामों से जानी जाती है। पांच से आठ फीट ऊंचे हींग के पौधे का तैलीय गोंदयुक्त राल हिङ्गु कहलाता है। यह मुख्यतया भूमध्यसागरवर्ती क्षेत्र, फारस व अफगानिस्तान में होती है। इन्हीं स्थानों से भारत में हींग का आयात होता है। हींग लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कटुरस युक्त व उष्णवीर्य होती है। यह कटु व उष्ण होने से दीपन पाचन होती है तथा स्निग्ध व तीक्ष्ण होने से अनुलोमन, शूलप्रशमन एवं कृमिघ्न है। मसाले के रूप में नाना व्यञ्जनों में इसका प्रयोग किया जाता है। अपनी विशिष्ट गन्ध व स्वाद से यह भोजन में विशेष रुचिवर्धक होती है। दीपन व अनुलोमन होने से अग्निमान्द्य, आध्मान, गुल्म, उदरशूल व विबन्ध में लाभकर होती है।

धनियाँ- यह धान्यक, धनिक, कुस्तुम्बुरु इत्यादि नामों से जाना जाता है। धनियाँ लघु व स्निग्ध होता है। यह कषाय, तिक्त, मधुर तथा कटु रसों

से युक्त होता है। विपाक में मधुर तथा उष्णवीर्य माना जाता है। यह रोचन, दीपन, पाचन व ग्राही होता है। इन्हीं गुणों के कारण इसका व्यञ्जनों में बहुलता से प्रयोग होता है। हरा धनियाँ अपनी मनोहारी सुगन्ध से विशेष रूप से रुचिजनक है एवं शीत गुण के कारण पित्तशामक होता है।

जीरा- यह जीरक, जरण, अजाजी इत्यादि नामों से जाना जाता है। जीरा लघु, रूक्ष व उष्णवीर्य होता है। उष्ण गुण के कारण यह कफवातशामक होता है। यह रोचन दीपन, पाचन, वातानुलोमन, शूलप्रशमन व ग्राही होता है। जीरा अरुचि, वमन, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, आध्मान, उदरशूल व ग्रहणी रोग में लाभकर होता है। उक्त विशिष्ट गुणों के कारण यह व्यञ्जनों में विशेष रूप से प्रयुक्त होता है।

हल्दी- यह हरिद्रा, निशा, दोषा इत्यादि नामों से जानी जाती है। हल्दी रूक्ष, लघु गुण वाली तथा तिक्त व कटुरस वाली होती है। यह विपाक में कटु तथा उष्णवीर्य होती है। उष्ण गुण के कारण यह कफवातशामक, पित्तरेचक व तिक्त होने से पित्तशामक भी है। यह रुचिवर्धक एवं वातानुलोमन होती है तथा अरुचि, विबन्ध, कामला व जलोदर में लाभदायक होती है।

राई- यह राजिका, आसुरी आदि नामों से जानी जाती है। राई तीक्ष्ण, कटुरस व उष्णवीर्य होती है। यह लघु, तीक्ष्ण और कटुतिक्त होने से वात तथा उष्ण होने से कफ का शमन करती है। राई उष्ण व कटु होने से दीपन पाचन व प्लीहावृद्धिहर (बढ़ी हुई तिल्ली को कम करने वाली) होती है। राई अग्निमान्द्य, अजीर्ण व अरुचि में विशेष लाभदायक होती है। अत एव व्यञ्जनों में इसका प्रयोग किया जाता है।

कालीमिर्च- यह मरिच, वेल्लज व ऊषण आदि नामों से जानी जाती है। यह लघु, तीक्ष्ण, कटुरस युक्त व उष्णवीर्य होती है। ऊष्णवीर्य होने से वात तथा कटु, रूक्ष व तीक्ष्ण होने से कफ का शमन करती है। तीक्ष्ण व उष्ण होने से यह लालास्राव-जनक, दीपन-पाचन एवं वातानुलोमन होती है। कालीमिर्च

अग्निमान्द्य, अजीर्ण, यकृद्विकार, आध्मान आदि में लाभकर होती है। अपने उक्त विशिष्ट गुणों के कारण ही व्यञ्जनों में इसका प्रयोग होता है।

अदरक- इसे संस्कृत में आर्द्रक व श्रृंगवेर कहते हैं। यह तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, कटु, रूक्ष, पाक में मधुर तथा कफ-वातहर होता है। पाचन-दीपन होने से इसका व्यञ्जनों में प्रयोग किया जाता है। इसी को सुखाने पर सोंठ बन जाती है। जो गुण सोंठ में होते हैं, वे अदरक में भी होते हैं।

शुण्ठी (सोंठ)- यह शुण्ठी, नागर, विश्वभेषज, महौषध आदि नामों से जानी जाती है। शुण्ठी लघु, स्निग्ध, गुरु, रूक्ष व तीक्ष्ण होती है। विपाक में मधुर, उष्णवीर्य तथा कटुरस युक्त होती है। यह उष्ण होने से कफवात-शामक है। शुण्ठी रोचन, दीपन, पाचन, एवं वातानुलोमन होती है। इसके इन विशिष्ट गुणों के कारण अनेक व्यञ्जनों में इसका प्रयोग किया जाता है।

सैन्धव लवण- यह सैन्धव, मणिमन्थ व सिन्धुज इत्यादि नामों से जाना जाता है। मुख्य रूप से सिन्धु प्रदेश (सिन्ध, पाकिस्तान) में उपलब्ध होने के कारण यह सैन्धव कहलाता है। हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिले में भी यह मिलता है। सैन्धव लवण त्रिदोषशामक रोचन, दीपन, चक्षुष्य (नेत्र-हितकर), अविदाही और हृद्य एवं शीतवीर्य होता है। अरुचि, अजीर्ण, शूल व विबन्ध में लाभदायक होता है। अन्नद्रव्यों में रुचि पैदा करने वाले पदार्थों में यह सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। सभी शाकों व व्यञ्जनों में इसका प्रयोग होता है। अन्य सभी प्रकार के लवणों में सैन्धव-लवण ही उत्तम माना जाता है।

सौवर्चल लवण- यह सौवर्चल, रुचक, सोंचर नमक, काला नमक इत्यादि रूप में जाना जाता है। प्राचीन काल से इसके दो विभाग किए गए हैं। गन्धयुक्त को सौवर्चल तथा गन्धरहित को कृष्ण लवण (काला नमक) कहते हैं। यह लघु, विशद, सूक्ष्म व स्निग्ध गुण वाला होता है। सौवर्चल विपाक में मधुर व उष्णवीर्य होता है। यह लवण रोचन, दीपन, पाचन एवं वातानुलोमन होता

है। अजीर्ण, मन्दाग्नि एवं अरुचि में यह बहुत लाभदायक होता है। प्रस्तुत पुस्तिका में अरुचि की चिकित्सा (पृष्ठ-१९) में इसका उपयोग बताया है।

मरिचमञ्जरी (हरी मिर्च)- यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटुरस युक्त एवं उष्णवीर्य होती है। उष्ण गुण के कारण कफवात-शामक तथा पित्तवर्धक होती है। यह अरुचि, अग्निमान्द्य एवं आनाह में उपयोगी होती है। प्रस्तुत पुस्तिका में इसे मुख्य घटक मानते हुए मरिचमञ्जरी व्यञ्जन (संख्या १०३) का वर्णन किया है।

इलायची- यह एला, त्रिपुटा, सूक्ष्मैला तथा त्रुटि इत्यादि नामों से जानी जाती है। इलायची लघु व रूक्ष गुण युक्त तथा कटु व मधुर रस वाली होती है। यह विपाक में मधुर तथा शीतवीर्य एवं त्रिदोषहर होती है। इलायची अपने गुण व रस से कफ का, विपाक से वात का, वीर्य से पित्त का शमन करती है। यह मुखशोधन, दुर्गन्धिनाशन, रोचन, दीपन-पाचन व अनुलोमन होती है।

निम्बू- अम्ल, लघु, वातघ्न एवं दीपन-पाचन होता है। अरुचि को दूर करने में आयुर्वेद में इसे विशेष रूप से कारगर बताया है। अनेक व्यञ्जनों में इसका प्रयोग हुआ है।

चिञ्चा/तिन्तिड़ी- हिन्दी में इसे इमली कहते हैं। कच्ची इमली अम्ल, गुरु, उष्णवीर्य, वातशामक एवं कफपित्त-वर्द्धक होती है। पकी इमली मधुराम्ल दीपन, सर तथा कफवातशामक होती है। इमली का प्रयोग अनेक व्यञ्जनों में हुआ है।

आम्रचूर्ण (अमचूर)- कच्चे आम को सुखाकर चूर्ण बनाया जाता है। इसे ही आम्रचूर्ण या अमचूर कहते हैं। यह व्यञ्जनों को स्वादिष्ठ बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसे अल्पमात्रा में ही लेना चाहिए। अधिक मात्रा में हानिकारक होता है। प्रस्तुत पुस्तिका में मुनिफल व्यञ्जन (संख्या-३७) में इसका उपयोग बताया है।

धान्याम्ल/काञ्जी- सिद्ध चावल (भात) को तीन गुने जल में एक सप्ताह तक सन्धान करने से जो अम्ल द्रव्य उत्पन्न होता है, उसे धान्याम्ल (काञ्जिक अथवा आरनाल) कहते हैं। काञ्जी भेदी, तीक्ष्ण, उष्ण, रोचन, पाचन व लघु होती है। आयुर्वेद में अरुचि, मन्दाग्नि एवं वातरोगों को दूर करने में इसे अतीव उपयोगी पेय माना जाता है। प्रस्तुत पुस्तिका में अनेक व्यञ्जनों में इसका प्रयोग बताया गया है। राजिका वटक (व्यञ्जन संख्या- १८) को आरनाल (काञ्जी) में डुबोने का विधान किया है। इसके अतिरिक्त करमर्द्दक काञ्जी (व्यञ्जन संख्या- ८२), तक्र काञ्जी (व्यञ्जन संख्या-८३) का भी वर्णन है।

क्षार- यह श्वेताभ, चिकना एवं पिच्छिल द्रव्य होता है, जो जल में शीघ्र घुल जाता है तथा आशुकारी (शीघ्र असर करने वाला) होता है। यह जलीय अंश को आकर्षित करता है तथा धातुओं को गला देता है। इसीलिए- **क्षरणात् क्षारः** अर्थात् धातुओं को गला देने के कारण इसे क्षार कहते हैं। यह खान से मिलता है तथा वृक्षों को जलाकर उनकी भस्म (राख) से भी प्राप्त होता है। जैसे पलाश क्षार (ढाक के वृक्ष की राख से निकला क्षार), यवक्षार (जवाखार) आदि। क्षार तीक्ष्ण व श्लक्ष्ण होता है। यह कटु, नमकीन, तिक्त व कषाय रसों से युक्त होता है। विपाक में कटु तथा उष्णवीर्य होता है।

मृदु (जो अधिक तीक्ष्ण नहीं होते, ऐसे) क्षार- दीपन, पाचन, अ-म्लतानाशन, अनुलोमन और कृमिघ्न होते हैं। ये लालास्राव को बढ़ाते हैं तथा आमाशय में जाने पर कफांश को विलीन करते हैं तथा अत्यम्लता (बहुत अधिक एसिड) को नष्ट करते हैं। ये कार्बनडाई-ऑक्साइड को उत्पन्न करते हैं, जो पुनः आमाशयिक स्राव को बढ़ाकर दीपन-पाचन व अनुलोमन का कार्य करती है। आमाशयिक कला में क्षोभ उत्पन्न कर वहाँ रक्तसञ्चरण बढ़ने से भी स्राव उत्पन्न होता है। क्षारीयता के कारण यह अग्न्याशयिक स्राव की मात्रा को न्यून करता है, परन्तु उसकी कार्य क्षमता को बढ़ा देता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक व्यञ्जनों (कर्परी, संख्या- ४०, वार्ताक व्यञ्जन-५१ आदि) में

क्षार के प्रयोग का विधान किया गया है।

स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार)- यह भी पलाशक्षार, यवक्षार आदि के समान एक वानस्पतिक क्षार है। वास्तूक कुल की लोणी (लवणी), या सज्जीबूटी को जलाकर इसे बनाते हैं। पंजाब में यह बहुलता से बनाया जाता है। स्वर्जिकाक्षार कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, अनुलोमन व कृमिघ्न होता है। यह शूल, गुल्म, आध्मान, विबन्ध, अर्श, प्लीहा-विकार आदि में लाभदायक होता है। प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित व्यञ्जन मुद्गपर्पट/मूँग के पापड़ (संख्या-३८) में स्वर्जिकाक्षार का प्रयोग भी निर्दिष्ट है। आजकल जो खाने का सोडा प्रयुक्त होता है, वह भी एक प्रकार का क्षार है।

वेसवार- अनेक पाचन, दीपन व रोचन उपस्करों का मिश्रण ही आयुर्वेदीय ग्रन्थों में वेसवार नाम से जाना जाता है। वेसवार का विवरण इस प्रकार मिलता है-

सैन्धव-त्रिकटु-धान्यजीरकैर्दाडिमीरजनिरामठान्वितैः।
पाचनोऽथ जठराग्निदीपनो वेसवार उदितो मनीषिभिः।।

(अजीर्णामृतमञ्जरी-४८)

सैन्धव (सेंधा नमक), त्रिकटु (सम मात्रा में मिली सोंठ, काली मिर्च व पीपल का चूर्ण) धनिया, जीरा, अनारदाना, हल्दी, हींग, इन सबके मिश्रण से बना वेसवार (वेशवार) आम-पाचक व जठराग्नि-दीपन होता है, ऐसा आयुर्वेद-मनीषियों का कथन है। वेसवार का एक अन्य लक्षण इस प्रकार भी मिलता है-

विश्वौषध-चपलोषण-सैन्धव-धान्याक-हिङ्गु-राजीभिः।
करकाजाजियुताभिर्गदितो मुनिभिस्तु वेशवारोऽयम्।।

(अजीर्णामृतमञ्जरी, पृ. ३५)

विश्वौषध (सोंठ), चपला (पीपल), ऊषण (कालीमिर्च), सैन्धव लवण, हींग, राई, करक (अनार) एवं अजाजी (जीरा), इन सबके मिश्रण से वेसवार

(गर्म मसाला) बनता है। कोलशिम्बी व्यञ्जन (व्यञ्जन संख्या- ५८) में वेसवार का प्रयोग बताया है।

मल्ली- यह उष्ण, लघु, वृष्य, तिक्त एवं कटु होती है। यह वातपित्तहर तथा विष, कुष्ठ एवं अरुचि को दूर करती है। मल्ली, चम्पक व केतकी का उपयोग कदलीफल व्यञ्जन-१ (संख्या-६९) में सुगन्ध व रुचि के लिए निर्दिष्ट है।

चम्पक- कटु, तिक्त, कषाय, मधुर व शीतल होता है। यह विष एवं कृमियों का नाशक, मूत्रकृच्छ्रहर, कफ-वातघ्न एवं रक्तपित्त-निवारक होता है।

केतकी- मधुर, कटु, तिक्त व कफनाशक होती है।

चतुर्जातक- उपस्कर (मसालों) के रूप में प्रयुक्त किए जाने वाले चार सुगन्धित द्रव्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों में चतुर्जात या चतुर्जातक नाम से प्रसिद्ध हैं जो इस प्रकार हैं- दालचीनी, इलायची, तेजपत्र और नागकेसर। इनमें इलायची का वर्णन पीछे आ चुका है। शेष का विवरण इस प्रकार है-

दालचीनी- मधुर, तिक्त वातपित्तनाशक, वर्णप्रसादकारक व सुगन्धित होती है। यह मुखशोष तथा तृषा को दूर करती है।

नागकेसर- यह कषाय, उष्ण, रूक्ष, लघु एवं आमपाचन होता है। दुर्गन्ध, कुष्ठ, विसर्प, विष एवं कफपित्त का निवारक होता है।

तेजपत्र- मधुर, कुछ तीक्ष्ण, उष्ण व लघु होता है। यह कफवात और अरुचि को दूर करता है।

चन्दन- यह गन्धसार, मलयज व चन्दन इत्यादि नामों से जाना जाता है। चन्दन लघु, रूक्ष, गुण युक्त, तिक्त व मधुर रस वाला एवं विपाक में कटु, शीतवीर्य तथा कफपित्तशामक होता है। उत्तम गन्ध के कारण रुचिकारक होने से कतिपय पेयों में इसका मिश्रण किया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित धूमवर्त्ति व ताम्बूल (श्लोक-१२९, १३४) में भी इसका उपयोग विहित है।

कपूर- यह कर्पूर, घनसार, चन्द्र, शशी इत्यादि नामों से जाना जाता है। कपूर

का वृक्ष सौ फीट तक ऊंचा एवं सदा हरित होता है। इस वृक्ष के सभी अंगों में कपूर की गन्ध रहती है। कपूर इस वृक्ष के कोटरों में सञ्चित होता है। कपूर लघु, तीक्ष्ण गुण वाला तथा तिक्त, कटु व मधुर रस वाला होता है। यह विपाक में कटु तथा शीतवीर्य होता है। यह तिक्त होने से कफशामक, मधुर होने से वातशामक तथा शीतल होने से पित्तशामक होता है। इस प्रकार यह त्रिदोषहर है।

सुगन्धित होने से कपूर मुख की दुर्गन्ध दूर करता है तथा तिक्त होने से मुखशोधन करता है। मुख में रखने से प्रारम्भ में शीतलता तथा तत्पश्चात् उष्णता का अनुभव करवाता है। यह मुखगत शिराओं पर प्रभाव करते हुए रक्तसंवहन, लालास्राव तथा कफनि:सारण को बढ़ा देता है, अत: रुचिवर्धक है। कफपित्तशामक होने से प्यास को शान्त करता है। यह आमाशयगत रक्त को संचरण बढ़ाने के कारण दीपन-पाचन होता है। अत एव प्रस्तुत पुस्तिका (श्लोक १२७) में बताया है कि विशिष्ट विधि से संरक्षित वृष्टिजल में थोड़ा-सा कपूर मिलाकर पीने से शीघ्र भोजन का पाचन होता है तथा दीर्घायु मिलती है।

यह आँतों की परिसरण गति को बढ़ाता है, अत: अनुलोमन है। यह तीक्ष्ण होने से अधिक मात्रा में लेने पर आमाशय पर लेखन कर्म करता है, जिससे अरुचि, हल्लास एवं वमन होने लगते हैं। अत: इसका प्रयोग अल्प मात्रा में ही करना चाहिए। कपूर मुखरोगों में तो प्रयुक्त होता ही है, इसके साथ अरुचि, अग्निमान्द्य, आध्मान व अतीसार आदि में भी लाभदायक होता है। सुगन्धित, रोचन व दीपन-पाचन होने से अनेक व्यञ्जनों (पाचनकारी तक्र-५, व्यञ्जन संख्या- ८९) और पेयद्रव्यों (पाचनकारी जल, श्लोक संख्या- १२७), तथा ताम्बूल/पान (श्लोक संख्या-१३०, १३३, १३४) में इसका प्रयोग निर्दिष्ट है। आजकल जो कृत्रिम (सिन्थेटिक) कपूर बाजार में मिलता है, वह व्यञ्जनों के काम का नहीं होता। अत: उसका उपयोग भूलकर भी न करें।

अगरु- उष्ण, कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, लघु व पित्तकारक होता है। यह कफवातहर होता है। सुगन्ध के लिए धूमवर्त्ति (श्लोक-१ २ ९) में इसका उपयोग विहित है।

पूगीफल- पूग (सुपारी) का वृक्ष शाखा रहित ४० से ६० फीट तक ऊंचा होता है। यह भारत के समुद्रवर्ती प्रदेशों में पाया जाता है। इसके फल पूगीफल (सुपारी) नाम से प्रसिद्ध हैं। पूगी (सुपारी) गुरु, रूक्ष, कषाय, मधुर, कटुविपाक एवं शीतवीर्य होती है। यह लालास्राव को बढ़ाती है तथा दुर्गन्ध को दूर करती है। अतः मुख वैशद्य-कारक, रोचन व दीपन होती है। इसीलिए ताम्बूल (पान) में इसका उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में भी ताम्बूल के प्रसंग में सुपारी का उपयोग बताया है। सुपारी कषाय रस के कारण स्तम्भन गुण वाली होती है। ओजोनाशक, विकासी एवं रक्त, मांस आदि धातुओं में शैथिल्यकारक होने से इसका अधिक उपयोग हानिकर होता है।

चूना- यह चूर्ण, सुधा इत्यादि नाम से जाना जाता है। यह चूना-पत्थर को पकाकर उससे प्राप्त किया जाता है। इसमें कैल्शियम की प्रधानता होती है। यह लेखन गुण वाला होता है। चूर्णोदक (चूना-पानी) शामक व स्तम्भन होता है। चूना पाचन, अम्लतानाशक, बल्य एवं विषघ्न होता है। अजीर्ण, अम्लपित्त, उदरशूल, ग्रहणी, अतिसार तथा छर्दि आदि में लाभदायक होता है। ताम्बूल (पान) बनाने में चूना एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

श्रीवास- सरल अर्थात् चीड़ वृक्ष का निर्यास (गोंद) ही श्रीवास कहलाता है। यह मधुर, कषाय, तिक्त, स्निग्ध, उष्ण, पित्तकर व सर होता है। श्रीवास वातरोगों को नष्ट करता है तथा मूर्धा, नेत्र, स्वर एवं कफ के विकार को भी दूर करता है। प्रस्तुत पुस्तिका (श्लोक-१ ३ ३) में ताम्बूल के अन्दर इसके मिश्रण का विधान किया है।

कस्तूरी- यह कस्तूरी, मृगनाभि, मृगमद इत्यादि नामों से जानी जाती है। तिब्बत, नेपाल, भूटान, आसाम, काश्मीर आदि हिमालीय प्रदेश में ७-८

हजार फीट की ऊंचाई पर घने जङ्गलों में कस्तूरी मृग मिलता है। उसे मारकर नाभ्यण्ड से कस्तूरी प्राप्त की जाती है। कस्तूरी, लघु, रूक्ष व तीक्ष्ण गुण वाली एवं तिक्त व कटु रस से युक्त होती है। यह विपाक में कटु तथा उष्णवीर्य होती है। यह सुगन्धित होने से रुचिवर्द्धक तथा दीपन-पाचन व अनुलोमन होती है। कस्तूरी का उपयोग धूमवर्त्ति (श्लोक- १२९) तथा राजभोग्य ताम्बूल (श्लोक- १३४) में बताया गया है।

कत्था (खदिरसार)- खदिर (खैर) वृक्ष लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक एवं शीतवीर्य होता है। यह तिक्तकषाय होने से कफ व पित्त का शमन करता है। शीतवीर्य होने से पित्तशामक भी है। खदिर की लकड़ी से कत्था (खदिरसार) तैयार किया जाता है। इसके भी पूर्वोक्त गुण जानने चाहिए। ताम्बूल (पान) में कत्था एक मुख्य घटक होता है। प्रस्तुत पुस्तक में भी ताम्बूल-वर्णन के प्रसंग में इसका प्रयोग बताया है।

केसरतरु पुष्प (पुन्नागकेसर के फूल)- केसरतरु अथवा पुन्नागकेसर साधारण उंचाई वाला सदा हरित वृक्ष होता है। इसके पुष्प बहुसंख्या में आते हैं। ये चार दल वाले लाल रेखांकित, सुगन्धित व श्वेत रंग वाले गुच्छाकार में होते हैं। सूखी पुष्प-कलिकाओं का औषधीय प्रयोग किया जाता है। ये सुगन्धित, ग्राही, दीपन तथा तिक्त होती हैं। प्रस्तुत पुस्तिका में केसरतरु के प्रसव (फूल) का प्रयोग राजभोग्य ताम्बूल (श्लोक १३४) में निर्दिष्ट है।
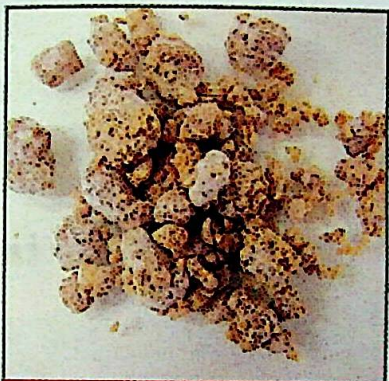
हिंगु (हींग)

धान्यक (धनियां)
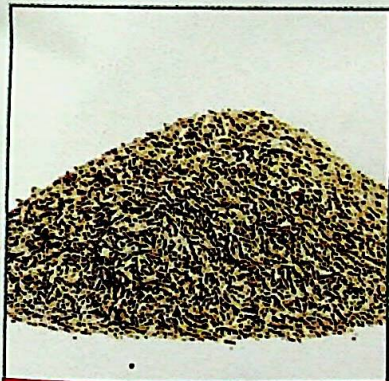
जीरक (जीरा)
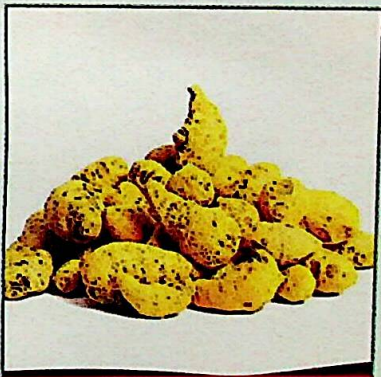
हरिद्रा (हल्दी)

राजिका (राई)

मरिच (काली मिर्च)

व्यञ्जनों में प्रयुक्त उपस्कर (मसाले)
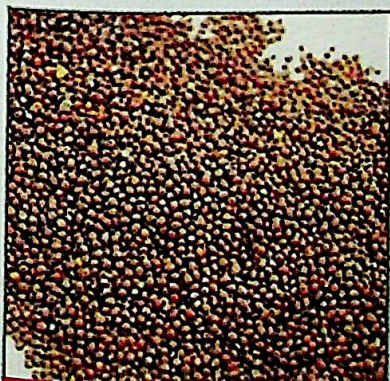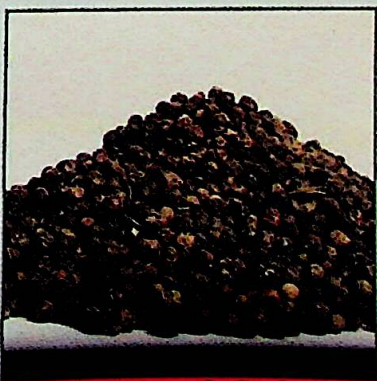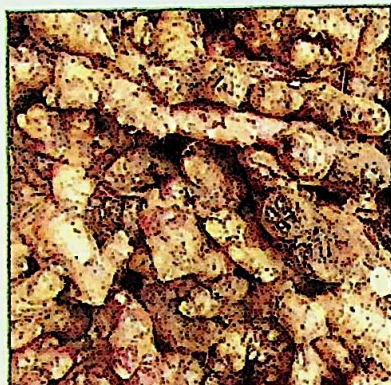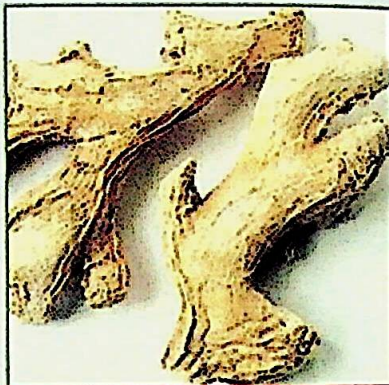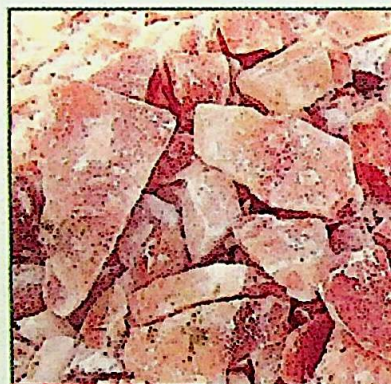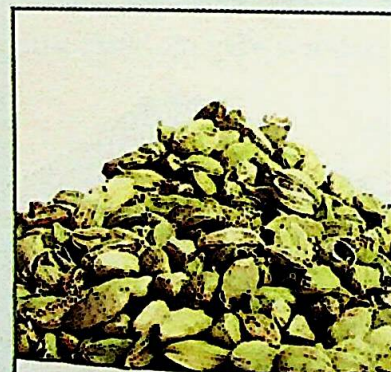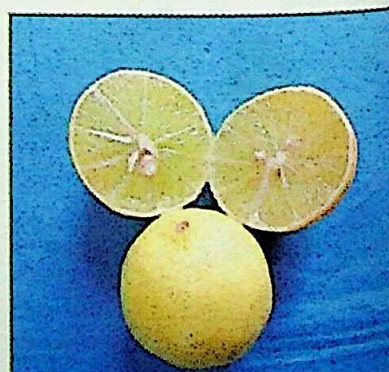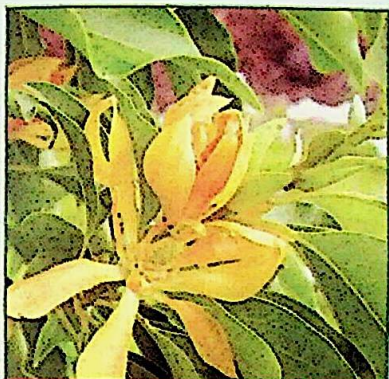
चम्पा पुष्प

चन्दन
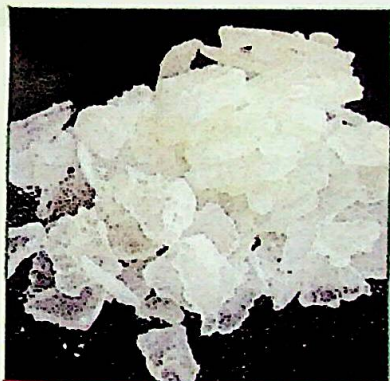
कर्पूर (कपूर)
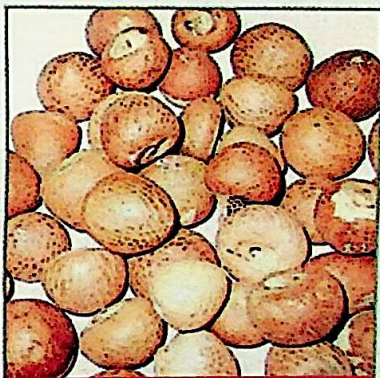
पूगीफल (सुपारी)
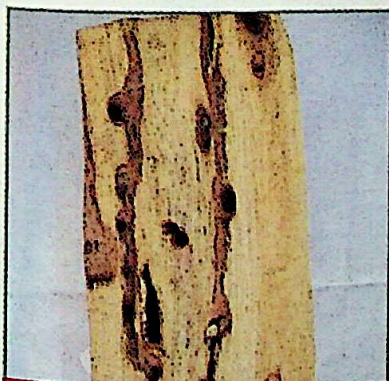
अगरु (अगर)
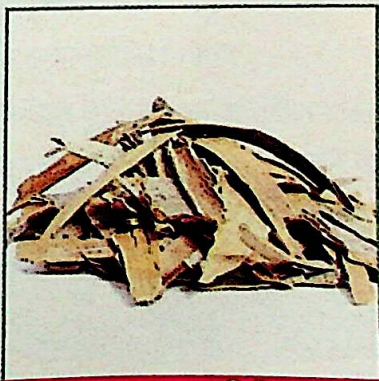
त्वक (दालचीनी)

जायफल
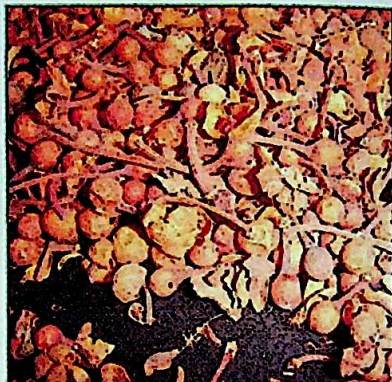
नागकेशर
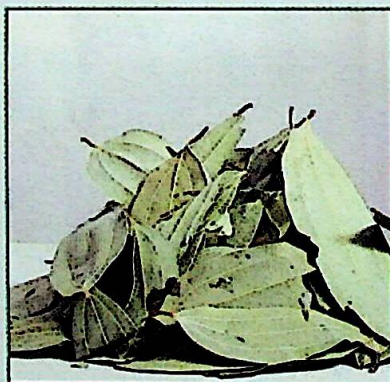
तेजपत्र
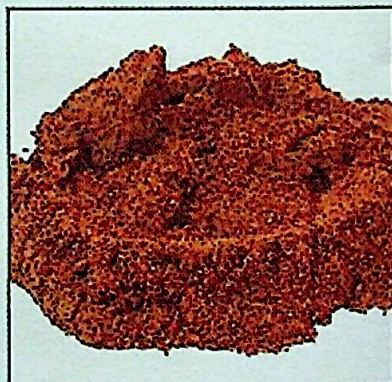
खदिरसार (कत्था)
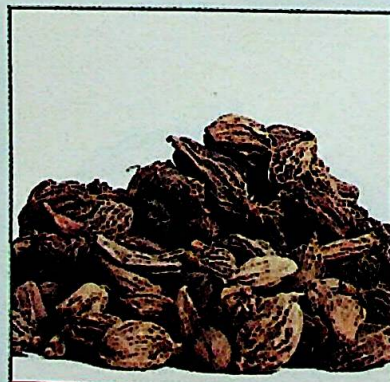
बड़ी इलायची

ताम्बूलपत्र (पान के पत्ते)

ओ३म्
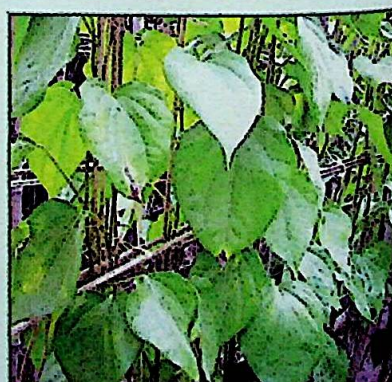
परमपाशुपत-श्रीमत्परप्रणवकवि-विरचिता

रुचिवधू-गल-रत्नमाला

(मंगलाचरण)

यस्याः कराम्बुजवशादमृती भवन्ति
पर्णतृणान्यपि कटाक्षनिरीक्षणाच्च।
निःस्वा अपि त्रिदशपादपतां लभन्ते
सा पार्वती जयति पाकविवेकभूमिः ।।१।।

जिसके करकमलों के स्पर्श से पर्ण (पत्ते) व तृण (घास) आदि नीरस वस्तुएं भी अमृतरूप बन जाती हैं तथा जिसके कटाक्ष-निरीक्षण (कृपापूर्ण दृष्टिपात) से निर्धन जन भी अभीष्ट फलदाता कल्पतरु बन जाते हैं, वह पाकविद्या-निधानभूता भगवती अन्नपूर्णा देवी पार्वती विजयी हो रही हैं, अर्थात् संसार में सर्वोत्कृष्टतया विराजमान हैं।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय

गौरीमतं नलमतं सकलं विलोक्य
भीमस्य भोजनृपतेरपि वीक्ष्य शास्त्रम्।
तोषाय भोजनविनोदजुषां नृपाणा-
माधीयते रुचिवधू-गल-रत्नमाला ।।२।।

गौरीमत एवं नलमत नामक पाक-विद्या के ग्रन्थों का अवलोकन कर तथा भीम व भोजराज द्वारा रचित पाकशास्त्र का भी अनुशीलन करने के उपरान्त यह रचना की है। राजाओं के लिए भोजन-विषयक सन्तोषजनक जानकारी देने के लिए यह रचना उनकी भोजन-रुचि रूपी वधू के गले की रत्नमाला के रूप में प्रस्तुत की जा रही है।

---

१. तूर्णं तृणा०- ब.२, पर्णतृणा०- ब.१, भो.। २. ०कृतां- भो. ब.१; ०जुषां- ब.२;

विशेष- गौरीमतम् एवं नलमतम् नामक पाकशास्त्रीय ग्रन्थ इस पुस्तिका के रचनाकार के सम्मुख थे। इसी प्रकार भीम द्वारा रचित **सूपशास्त्रम्** तथा राजा भोज द्वारा रचित अन्य पाकशास्त्रीय ग्रन्थ भी रचनाकार के सम्मुख था। इन प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर ही परप्रणवाचार्य ने यह संक्षिप्त व रुचिकर रचना प्रस्तुत की है।

पथ्यादयः परिचिता जनयन्ति काले
पुंसः क्षुधां रसनसम्मदनांशभूताः।
एषा परं रुचिवधू-गल-रत्नमाला
सद्यः श्रुतापि रुचिमुच्चिनुतेऽतिचित्रम्।।३।।

पथ्याहार या पथ्या (हरड़) आदि क्षुधावर्धक सुपरिचित पदार्थ तो सेवन करने के समय में ही मनुष्य की क्षुधा को जागृत करते हैं; परन्तु यह **रुचिवधू-गल-रत्नमाला** तो सुनते ही तुरन्त रुचि जागृत कर देती है। यह इसकी अति विचित्र बात है। भाव यह है कि प्रस्तुत पुस्तिका के श्रवण-मात्र से ही इसमें रुचि बढ़ जाती है तथा इसमें वर्णित व्यञ्जनों के सेवन से भोजन में भी अवश्य ही रुचि बढ़ जाती है ।

राज्येऽपि भोजनमुशन्ति ससारमेकं
वश्यं रुचेस्तदपि सापि च शाकवश्या।
तस्मादनेकरचनारुचिमन्ति तानि
कल्पोचितक्रमवशेन निरूपयामः।।४।।

राज्य मिलने पर भी भोजन ही एक विशिष्ट सारभूत वस्तु मानी जाती है। वह भोजन रुचि के अधीन है तथा रुचि शाक आदि व्यञ्जनों के अधीन

---

३. विचित्रम्- ब.२, अतिचित्रम्- ब.१, भो.।
४. सुसार०- ब.२, ससार०- ब.१, भो.। पथ्योचित०- ब.२, कल्पोचित०- ब.१, भो.। कल्प= औषध या आहार के विविध रूप- औषधकल्प/आहारकल्प।

होती है। अत: इस पुस्तिका में विविधतापूर्ण नाना रुचिकर शाकों/व्यञ्जनों का विशिष्ट विधि-पूर्वक वर्णन किया जा रहा है।

भोजनगृह

गौरी-नलादि-लिखिताखिल-पाकसम्पद्-
व्यापारितौदनिक-सम्भ्रम-दर्शनीयम्।
स्वप्नेऽपि वैरिनरगोचरतामयातं
चन्द्रोपमं क्षितिभृतां भुजिकर्मधाम।।५।।

गौरी व नल आदि प्रसिद्ध पाकशास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट नाना प्रकार की पाकविधियों में संलग्न पाचकों (रसोइयों) की व्यस्तता से दर्शनीय बना हुआ तथा स्वप्न में भी वैरी जनों की पहुंच से बाहर अर्थात् अत्यन्त सुरक्षित राजाओं का भोजनगृह चन्द्रतुल्य दर्शनीय व आह्लादक होता है।

विषान्न-परीक्षा के साधन

तस्याजिरे मृग-मराल-चकोर-कीर-
क्रौञ्च-प्लवङ्ग-शिखि-कुर्कुट-बभ्रवश्च।
धार्या गरस्य परिहारधिया धनेशै:
किं श्रीमतां जगति दुर्लभमस्ति किञ्चित्।।६।।

इस प्रकार के भोजनगृह के आंगन में राजा व धनाढ्य जनों को विष की पहचान करने व उससे बचने के लिए मृग, हंस, चकोर, शुक, क्रौञ्च, वानर, मयूर, कुर्कुट (मुर्गा) व बभ्रु (नेवला) आदि प्राणियों को रखना चाहिए।

---

५. चन्द्रोपमं क्षितिभृतां-ब.१, भो., चन्द्रोदये कुसुमितं-ब.२,चन्द्रद्रवै: सुरभितं- इति क्षेमकुतूहले (२.७) पाठ:। (तुलनीय- क्षेम०- २.७)

६. कुर्कुट- ब.१, कुक्कुट- ब.२ (तुलनीय- क्षेम०- २.२६)

एणो रौति स्खलति गमने राजहंसश्चकोर-
स्याक्षिद्वन्द्वं विरजतितरां वान्तिकृत् कीरपोतः।
रौति क्रौञ्चो विसृजति कपिर्माद्यते नीलकण्ठः
शब्दप्रीतिं सपदि सृजतो दक्ष-बभ्रू विषेण।।७।।

विषमिश्रित अन्न को देखकर हरिण चिल्लाने लगता है। ऐसे अन्न को देखते ही हंस की चाल लड़खड़ा जाती है, चकोर पक्षी की दोनों आँखें फीकी पड़ जाती हैं, शुक-शावक (तोते का बच्चा) वान्ति (उल्टी) करने लगता है, क्रौञ्च पक्षी भी चिल्लाने लगता है, वानर मल-मूत्र त्यागने लगता है। विष मिले अन्न को देखकर नीलकण्ठ (मोर) तो प्रसन्न हो जाता है। इसी प्रकार दक्ष (मुर्गा) व बभ्रु (नेवला) भी खुशी से शब्द करने लगते हैं।

प्राचीन काल में राजा व अन्य धनी-मानी लोगों को भोजन में विष मिलाने का भय रहता था। शत्रु के गुप्तचर भी राज-परिवार की महिलाओं को बहकाकर, सौभाग्यवृद्धि का लोभ दिखाकर टोने-टोटके के रूप में उनके माध्यम से विषमिश्रित वस्तु भोजन में मिलवा देते थे। अतः विषमिश्रित अन्न की परीक्षा के लिए भोजनगृह के पास विशिष्ट पक्षियों व वानर, हरिण आदि कुछ अन्य प्राणियों को रखा जाता था। विषमिश्रित अन्न को देखकर होने वाली इन प्राणियों की विशिष्ट चेष्टाओं/प्रतिक्रियाओं से राजा ऐसे अन्न की पहचान कर उससे बचने के लिए यत्नशील रहते थे।

भोक्ता (भोजन करने वाला)

निर्मृष्टतारतर-सुन्दर-शुक्लवासा-
स्तत्कालधौतचरणः प्रियपुत्रमित्रः।

७. प्रैति क्रौञ्चो- ब.१, ब.२, भो., रौति क्रौञ्चो- क्षेम०-२.२६; (तुलनीय क्षेम० २.२६)

स्रग्वी प्रसन्नहृदयो रसपाकवेत्ता
भोक्ता भवेदुचितदानसमानसूदः।।८।।

स्वच्छ, चिकने, सुन्दर व श्वेत वस्त्र धारण किए तथा चरण-प्रक्षालन कर प्रिय पुत्र व मित्र सहित स्रग्वी (मालाधारी) प्रसन्नहृदय राजा भोजन करने के लिए भोजनगृह में प्रवेश करे। राजा को उचित वेतन व मान द्वारा सूदों (पाचकों) को सन्तुष्ट रखना चाहिए। जिससे वे अपना कार्य प्रसन्नता व श्रद्धा के साथ करते रहें।

भोजन-पात्र

निस्तप्तकाञ्चन-विभूषण-भूषिताभिः
श्रेणीकृतानि परितः परिचारिकाभिः।
राकाशशाङ्क-नवमण्डल-भास्वराणि
क्षोणीभृतां कनकभोजनभाजनानि।।९।।

निस्तप्त अर्थात् तपे हुए खरे सोने के आभूषणों से विभूषित परिचारिकाओं द्वारा चारों ओर श्रेणीबद्ध (पंक्तिबद्ध) रूप में रखे हुए पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर व चमकदार स्वर्णपात्र राजाओं के भोजनगृह में रखने चाहिए।

परिवेषिका (परोसने वाली)

स्नाता विशुद्धवसना नवधूपिताङ्गी
कर्पूरसौरभमुखी नयनाभिरामा।
बिम्बाधरा शिरसि बद्धसुगन्धपुष्पा
मन्दस्मिता क्षितिभृतां परिवेषिका स्यात्।।१०।।

---

८. स्नातः सुधौतमृदुसुन्दरशुक्लवासाः, ...रसपाकवेद्यां भोक्ता प्रविश्य हितसात्म्यसमानवैद्यैः- इति क्षेमकुतूहले (६.१) पाठभेदः। (तुलनीय- क्षेम०- ६.१)
९. निष्टप्त०- ब.२, निस्तप्त०- ब.१, भो.। (तुलनीय- क्षेम०- ६.३)
१०. सुगन्धिपुष्पा- इति क्षेमकुतूहले (६.१६) पाठः।
(तुलनीय- क्षेम०- ६.१६)

स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किए हुए, ताजा धूप से सुगन्धित अंगों वाली, कर्पूर द्वारा सुगन्धित मुख वाली, सिर पर सुगन्धित पुष्पगुच्छ धारण करने वाली, मन्द मुस्कान युक्त नयनाभिराम, बिम्बाधरा सुन्दरी नारी राजाओं के भोजनगृह में परिवेषिका होनी चाहिए। बिम्बाधरा का अर्थ है- बिम्बी (कुन्दरू) के पके लाल वर्ण वाले फल के समान अधर (ओष्ठ) वाली नारी।

पाकाधिकृत वैद्य

पारङ्गतः सकलवैद्यकसंहितानां
सत्पाकशासनबुधो गुरुवत् प्रगल्भः।
ब्रूयादिदं नरपतेः परिवेषकाले
धन्वन्तरि-प्रतिनिधिर्भिषजां वरेण्यः।।११।।

सभी वैद्यक-संहिताओं में पारंगत, पाकशास्त्र का उत्तम विद्वान्, बृहस्पति के समान प्रगल्भ (बुद्धिमान् व वाग्मी), धन्वन्तरि के समान आयुर्वेद का परम ज्ञानी, श्रेष्ठ वैद्य भोजन-परिवेषण (खाना परोसने) के समय राजा को इस प्रकार कहे-

निरामिष भोजन का प्रस्ताव

देवावधारय महौदन-सूपसर्पिः
शस्तोद्भिदां च शुचि रोचय तेमनानि।
नैवामिषं यदपराधपराङ्मुखानां
क्षेमङ्करस्त्वमसि काननवासभाजाम्।।१२।।

---

११. (तुलनीय- क्षेम०- ३.१९)

१२. मा शंकथा- ब.१, ब.२, भो.। अस्य स्थाने- 'नैवामिषं'- इति 'भो.'-पुस्तिकायां पाठान्तरनिर्देशः। शस्तोद्भिदामचिररोचनजेमनस्ता- भो., ब.१, ब.२, 'शस्तोद्भिदां च शुचि रोचय तेमनानि'- भो.-पाठान्तरनिर्देशः। (तुलनीय- क्षेम०- ३.२०)

हे राजन्! उत्तम ओदन (भात) व सूप (दाल) तथा सर्पिः (घृत) आदि तथा प्रशस्त उद्भिद् (पृथ्वी का भेदन कर उगने वाले), शुद्ध पवित्र व निरामिष तेमनों (व्यञ्जनों) का सेवन कीजिए, ऐसे ही भोज्य आपको पसन्द हैं, मांस आदि कभी नहीं। क्योंकि आप बड़े दयालु हैं तथा निरपराध एवं निरीह वनवासी प्राणियों के भी रक्षक तथा शुभचिन्तक हैं।

तेमन ऐसे व्यञ्जन को कहते हैं, जो तरल (रसदार) होता है तथा जिसके साथ अन्न को मिलाकर खाते हैं। कहा भी है- **निष्ठानं तु तेमनं स्यात्**, नितिष्ठति अन्नमनेन निष्ठानं, पुंक्लीबलिङ्गः। यद् वाचस्पतिः- तेमने तु निष्ठानोऽस्त्री, तिम्यत्यार्द्रीभवत्यनेन तेमनमुपसेचनं, क्नोपनाख्यम्। (अभिधानचिन्तामणिः, स्वोपज्ञव्याख्या-३९९)

१. ओदन (भात)

सद्यः शालेयमन्नं शशिकरनिकरप्रोज्ज्वलं सिद्धसारं
भ्राम्यद्बाष्पच्छलेन त्रिदशपुर-सुधाधेय-माधुर्यतत्त्वम्।
अन्योन्यं नैव लग्नं परिमलभरितागारवेदीविभागं
स प्राप्नोति प्रसन्नः प्रमथपरिवृढो यस्य पुंसां वरस्य।।१३।।

चन्द्रमा की शुभ्र किरणों जैसा उज्ज्वल (धवल) सिद्धसार रूप, उठती हुई भाप के बहाने से जिसमें मानों स्वर्ग में सुलभ अमृत का तत्त्व ही उड़ेला जा रहा हो, ऐसा, परस्पर असंश्लिष्ट अर्थात् विशद (खिला हुआ), अपनी सुगन्ध से घर को सुगन्धित कर देने वाला उत्तम शालेय अन्न (शाल्योदन/श्रेष्ठ चावलों से बना भात) उसी सौभाग्यशाली व्यक्ति के भाग्य में होता है, जिसके ऊपर प्रमथनाथ (प्रमथ नामक गणों के स्वामी) भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं।

---

१३. (तुलनीय- क्षेम० - ६.२१)

२. मुद्गदाली (मूंग की दाल)

तां कण्डितां दधिविमर्दितमुद्गदालीं
संसाधितां लवणरामठगन्धगर्भाम्।
ते भुञ्जते कुमुदिनीदयितार्द्धमूर्द्धा
येषां सदा हृदयवारिरुहे निषण्ण:।।१४।।

अच्छी प्रकार से स्वच्छ कर दली गई तथा दही में मसलने के उपरान्त पकाई गई सैन्धव लवण व हींग से युक्त स्वादिष्ठ मूंग की दाल को खाने का सौभाग्य उन्हें ही मिलता है, जिनके हृदयकमल में सदा भगवान् चन्द्रमौलीश्वर (शंकर) बसे रहते हैं।

३. घृत

माञ्जिष्ठवारिरुचिहारि तनूष्मधारि-
सौरभ्यभारि रुचिसारि विलोभकारि।
भुङ्क्तेऽनिशं स खलु सर्पिरिदं नवीनं
य: पार्वतीचरणमूल-विलोलमौलि:।।१५।।

माञ्जिष्ठ (मंजीठिया) वर्ण जल के समान कान्तिमान्, कुछ उष्ण, सुगन्धयुक्त, रुचिकर घी को खाने का सौभाग्य उन्हें ही मिलता है, जो भगवती पार्वती के भक्त होते हैं, उनके चरणमूल में नतमस्तक होते हैं।

४. पायस (खीर)

निर्नीरपाचितपय:प्रहिताष्टमांश-
शालेयतण्डुलभवं निभृतान्तरोष्म।
तत्पायसं सरसमावसथं सुधाया:
को लेढि भूभृत ऋते घृततारखण्डै:।।१६।।

---

१४. कुमुदिनीदयितश्चन्द्र:, तस्यार्द्धं मूर्ध्नि मौलौ यस्य स कुमुदिनीदयितार्द्धमूर्धा शिव:। (तुलनीय- क्षेम०- ६.२४) १५. (तुलनीय- क्षेम०- ६.२९)

१६. निर्णीर०- ब.२, निर्नीर०- ब.१, भो.। भूभृत ऋते- ब.१, ब.२, भो.। भूभृतमृते- क्षेम०- १२.३; (तुलनीय- क्षेम०- १२.३)

बिना पानी मिलाए तथा औटाए दूध में अष्टम भाग परिमाण में चावल डालकर पकाई गई सरस व गर्म खीर तो साक्षात् अमृत का निवास स्थान ही है। घृत व खाँड मिली ऐसी खीर राजा जैसे भाग्यशाली व्यक्ति को छोड़कर किसे मिल सकती है?

५. फेनिका (फेनियाँ)

सरसाः पटलैरेताः पुराणस्येव संहिताः।
हसन्तीव सितत्वेन फेनिका मेनिकापतिम्।।१७।।

पुराण की संहिताएं जैसे अपने पटलों/अध्यायों से सरस होती हैं, ऐसे ही अपने पटलों/परतों से सरस बनी हुई तथा अपनी धवलता से मेनकापति (हिमालय) का भी उपहास करने वाली फेनिकाएं (फेनियाँ) भी किसी भाग्यवान् व्यक्ति को ही मिलती हैं।

मैदा या उड़द के महीन आटे में घी तथा दही मिलाकर मसलते हैं तथा उसकी वर्तियां बनाकर बेलते हुए लम्बी करते हैं। तत्पश्चात् चावल की पीठी का चूर्ण लपेटकर घृत में पकाते हैं। तदनन्तर खाँड की चाशनी से लिप्त कर फेनियाँ तैयार की जाती हैं। फेनिका एक स्वादिष्ठ पकवान है। इसी की धवलता (सफेदी) का प्रस्तुत श्लोक में वर्णन किया गया है। क्षेमकुतूहल (१०.१-७) में इसका विशदतया निरूपण किया गया है।

६. मोदक (लड्डू)

उत्कृष्टशर्करापाकैर्योजिताशोकवर्त्तिभिः।
बद्धः कर्पूरसुरभिर्मोदकश्चित्तमोदकः।।१८।।

उत्तम शर्करापाक से युक्त तथा अशोकवर्त्तियों से बाँधा गया एवं अल्प मात्रा में कर्पूर मिलाकर सुगन्धित किया हुआ मोदक (लड्डू) किसके चित्त का मोदक (आनन्ददायक) नहीं होता है।

---

१७. (तुलनीय- क्षेम०- १०.५)

★ यह पद्य क्षेमकुतूहल में निम्न प्रकार से उपलब्ध है-

उत्कृष्टशर्करापाके घृतभृष्टः सुवर्त्तिभिः।
बद्धः कर्पूरसुरभिर्मोदकश्चित्तमोदकः।। (क्षेम०- १०.२३)

इसका भाव यह है कि- सेवई को उत्तम चासनी में डुबोकर घृत में पकाना चाहिए। तदनन्तर कर्पूर से सुगन्धित कर इसके लड्डू बाँधने चाहिए। ये लड्डू **चित्तमोदक** नाम से जाने जाते हैं।

७. मण्डक (गेहूँ के माण्डे)

जलविलसितकल्पः शुद्धगोधूमपुञ्जः
प्रबलदृषदि कामं कण्डितः सैन्धवेन।
अपगततुषभावस्तेन चीनांशुकश्री-
समपहरणयोग्या मण्डकाः स्विन्नवृत्ताः।।१९।।

जल से अच्छे प्रकार स्वच्छ किए गेहूँ में उचित मात्रा में सैन्धव लवण मिलाकर चक्की में अच्छी प्रकार से पीस लें। तदनन्तर चलनी से छानकर इसके चोकर को दूर कर दें। इस प्रकार धवल वस्त्र की शोभा से भी बढ़कर शुभ्र शोभा वाले आटे से पहले तवे पर तथा तत्पश्चात् अंगारों पर पकाकर गोलाकर मण्डक (माण्डे) तैयार होते हैं।

★ **'स्विन्नवृत्ताः'** पाठ क्षेमकुतूहल- (१०.७३) से लिया गया है। इसके स्थान पर हस्तलिखित प्रतियों में **'स्पर्शवन्तः'** पाठ है, जो अर्थ की दृष्टि से संगत प्रतीत नहीं होता है।

८. क्षीरसार

क्षीरं प्रक्षीणनीरं क्वथितमतितरां रागवत्तामुपेतं
ब्रह्मक्षोणीजकल्कश्रितममृततलस्थायिपङ्कानुकारम्।

१९. स्पर्शवन्तः- ब.१, ब.२, भो., स्विन्नवृत्ताः-क्षेम०-१०.७३ (तुलनीय- क्षेम०- १०.७३)

व्यामिश्रं खण्डमण्डैः प्रदलितमरिचक्षोदसौरभ्यगर्भं
कोष्णं सञ्जातपाकं नरवरवदने लीयते क्षीरसारम् ।।२०।।

बहुत अधिक उबालने पर जलीय अंश से रहित तथा ब्रह्मक्षोणीज (ब्रह्मतरु/पलाश वृक्ष) के फूलों के कल्क जैसा लालिमा युक्त बना हुआ, अमृत के तल में स्थित पङ्क (तलछट) जैसा प्रतीत होने वाला, खाँड, माण्डे व काली मिर्च के चूर्ण से मिश्रित, (इलायची आदि से) सुगन्धित किया हुआ, थोड़ा-सा गर्म अवस्था में विद्यमान क्षीरसार राजा जैसे सौभाग्यशाली व्यक्ति के ही मुख में प्रवेश करता है। अर्थात् इस प्रकार का दिव्य भोज्य बड़े भाग्य से ही मिलता है।

९. गोलक दुग्ध

आगालितं वाससि सप्त वारान् विपाचितं गैरिकरागगौरम्।
दृढीकृतं मृन्मयनूत्नपात्रे प्ररोचनं गोलकदुग्धमेतत्।।२१।।

दूध को शुद्ध वस्त्र या चलनी से छानकर नये मिट्टी के पात्र में सात बार पकाकर गाढ़ा कर लें। अन्त में वह गोलाकार दृढ़ बन जाता है। इस प्रकार का गोलक रूप में बना दुग्ध बहुत ही रुचिकर व पुष्टिकर होता है।

१०. कोरवट

मरिचार्द्रक-जीर-सैन्धव-त्वच-वाह्लीकनितान्तमिश्रितः।
तलितस्तिलतैलमध्यगः प्रश्रृतः कोरवटो रुचिप्रदः।।२२।।

---

२०. क्षीरशाकम्- भो., ब.१, ब.२; क्षीरसारम्- क्षेम०- १०.७०; (तुलनीय- क्षेम०- १०.७०)

२१. 'सप्त वारान्' पाठ क्षेमकूतुहल (१०.६१) के आधार पर रखा है। इसके स्थान पर हस्तलिखित प्रतिलिपियों में 'तप्तपात्रे' पाठ उपलब्ध है। (तुलनीय- क्षेम०- १०.६१)

२२. ०द्रुतवाह्लीक- ब.१, ब.२, भो., ०त्वचवाह्लीक०- क्षेम०-९.३३; (तुलनीय- क्षेम०- ९.३३)

कालीमिर्च, अदरक, जीरा, सैन्धव लवण, त्वच (दालचीनी) व हींग से संस्कारित तिल के तेल में पकाकर दही या छाछ के घोल में छोड़ा हुआ माष (उड़द) की पिट्ठी से बना कोरवट बहुत ही रुचिकारक होता है।

११. माषेण्डरी (उड़द की बड़ी)

वाह्लीकार्द्रक-जीरकप्रभृतिभिः प्रत्येकसाक्षीकृता
गच्छन्ती शतपत्रपुष्पतुलनां माषेण्डरी पाण्डुरा।
तैलाक्ता नवरामठाङ्कुज-महाधूपान्धकारस्थिता
मुक्तीच्छोरपि सौरभेण नयते जिह्वालतां लोलताम्।।२३।।

हींग, अदरक, जीरा इत्यादि से संस्कारित, पकाने पर शतपत्र (कमल) के पत्र (पंखुड़ियों) के समान पाण्डुर (पाटल/गुलाबी) वर्ण वाली व हल्की एवं कोमल बनी हुई, तेल में डाली हींग से उठने वाले धुएं से व्याप्त माषेण्डरी (उड़द के आटे से बनी बड़ी) मुक्तीच्छु (मुमुक्षु/वैरागी) व्यक्ति की जिह्वालता (जीभ) को भी चञ्चल बना देती है, अर्थात् सुगन्ध व स्वाद के आर्कषण से यह विरक्त जनों को भी आकृष्ट कर लेती है।

१२. उड़द की बड़ी का व्यञ्जन

वाह्लीक-जीरक-नवार्द्रकपूर्णगर्भा
बाष्पेण जातपचना नवमाषपिण्डाः।
चूर्णीकृताः सुरभिहिङ्गुकृताधिवासाः
मन्दानलस्य रुचिदः खलु पूरणोऽयम्।।२४।।

वाह्लीक (हींग), जीरा तथा ताजा अदरक के टुकड़े उड़द की पिट्ठी के पिण्डों के अन्दर डालकर भाप से पकाएं। इसे पुनः हींग की सुगन्ध से सुगन्धित कर लें। इस प्रकार मसालों से भरे माषपिण्ड (उड़द की पिट्ठी के गोले) विशेष रूप से रुचिजनक होता है।

२३. (तुलनीय- क्षेम०- ९.१३) २४. (तुलनीय- क्षेम०- ९.२०)

पूरण- व्यञ्जनों में लोई के अन्दर मसाले भरने को पूरण कहते हैं।

१३. सूरणकन्द-व्यञ्जन-१

दिग्धो वाह्लीकतोयैः रजनिरसयुतो गोचरः सूर्यरश्मे-
रुत्क्षिप्योत्क्षिप्य पात्रे तिलरससहितः पाचितः सैन्धवेन।
जातः स्निग्धः सुगन्धिर्मरिचपरिचितः पाकरागं दधानो
दुर्नामारातिकन्दः सपदि जनयति प्राशितो जाठराग्निम्।।२५।।

हींग-मिश्रित जल से लिप्त तथा हरिद्रारस (हल्दी के रस) से युक्त, सूर्य की धूप में सुखाया हुआ तथा सैन्धव लवण के साथ पकाया हुआ, कालीमिर्च मिलाकर स्वादिष्ठ बनाया हुआ दुर्नामाराति कन्द (सूरण कन्द) सेवन करने पर शीघ्र ही जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है।

सूरण कन्द का एक अन्य नाम दुर्नामाराति कन्द भी है। इस नामकरण के पीछे कारण यह है कि यह दुर्नाम (बुरा नाम है जिसका ऐसे अर्शरोग= बवासीर) का अराति=शत्रु होता है, उसे नष्ट कर देता है। इस प्रकार अर्शरोग-नाशक होने से इसका उक्त नाम सार्थक है। कहा भी है- **'सूरणः कन्द औलश्च कण्डूलोऽर्शोघ्न इत्यपि'** (भावप्रकाश-निघण्टु- ९.९२)

१४. सूरणकन्द-व्यञ्जन-२

कन्दः सुन्दरमृत्तिकाभिरभितः संवेष्टितो यत्नतः
कारीषानलपाचितस्त्वगधनः क्षोदीकृतो मिश्रितः।
शुद्धैः सैन्धव-तैल-जीरक-जरज्जम्बीरनीरार्द्रकै-
र्जाड्यं खाण्डवखण्डतोऽपि हरते वह्नेरयं सूरणः।।२६।।

---

२५. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१९६)

२६. 'खाण्डवखण्डोऽपि हरते'- भो., ब.१., ब.२
'जाड्यंपाण्डुरतां तथैव हरते'- क्षेम०- ८.१९७ (तुलनीय- क्षेम०- ८.१९७)

सूरण कन्द के ऊपर मिट्टी का लेप कर उसे कण्डे की अग्नि में पकाएं। तदनन्तर छिल्का उतारकर सैन्धव लवण, तेल एवं जीरा मिलाकर पके निम्बू का रस डालें तथा अदरक भी मिलाएं। इस प्रकार तैयार किया सूरणकन्द का यह व्यञ्जन जठराग्नि की मन्दता को दूर कर देता है।

त्वगधन- इसका अर्थ है- त्वग् अर्थात् छिल्के से अधन (निर्धन) अर्थात् रहित।

१५. घोलवटक (छाछ के बड़े)

आत्मम्भरिः प्रवरसैन्धवशृङ्गवेर-
वाह्लीक-जीर-मरिचै रुचिरप्रयुक्तैः।
निर्वापितः सुरभिणो मथितस्य मध्ये
कल्पेत घोलवटको रुचिसम्पदे सः।।२७।।

प्रचलित विधि से तैयार किए गए बड़े के अन्दर उत्तम कोटि का सैन्धव लवण उचित मात्रा में मिलाएं तथा अदरक, हींग, जीरा व कालीमिर्च को भी रुचि के अनुसार उचित मात्रा में लेकर बड़े के अन्दर भर दें। तदनन्तर उसे (हींग आदि) से सुगन्धित किए हुए मथित (तक्र= छाछ) में डाल दें। इस प्रकार यह घोलवटक (घोल= छाछ में तैयार किया गया बड़ा) विशेष रूप से रुचिजनक होता है। घोल शब्द आयुर्वेदीय ग्रन्थों में तक्र (छाछ) का ही एक रूप है- 'घोलं तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकापि च' (भावप्रकाश-निघण्टु-१३.१)

१६. आश्चर्य-वटक

कणान् गोधूमानामपगततुषाणां सुरभिते
जले बद्ध्वा ग्रन्थौ परिलघु निदध्याद्दिनयुगम्।

---

२७. (तुलनीय- क्षेम०- ९.३६)

ततस्तोये तस्मिंल्लवणमुदकुक्षिम्भरिरयं
स्थित: पक्षं यावद् भवति रुचिदाश्चर्यवटक:।।२८।।

तुषरहित स्वच्छ गेहूँ को अपेक्षित मात्रा में लेकर कपड़े में ढ़ीली गांठ लगाकर दो दिन तक सुगन्धित जल में रखें। तदनन्तर उस जल में लवण मिलाकर बड़े छोड़ दें। पन्द्रह दिन के पश्चात् निकालें। इस प्रकार रुचिकारक आश्चर्यवटक तैयार होते हैं।

१७. चिञ्चा-वटक

तैलपचेलिम-चिञ्चाजल-गुडमिलितो मरीचसंयुक्त:।
प्रविशति चिञ्चावटक: सुकृतिन एवाननं रसिक:।।२९।।

बड़े को तेल में पकाकर इमली का रस, गुड़ व कालीमिर्च उचित मात्रा में मिला लें। इस प्रकार तैयार किया गया यह स्वादिष्ठ चिञ्चावटक किसी पुण्यशाली व्यक्ति के ही मुख में प्रविष्ट होता है। भाव यह है कि इस प्रकार का यह स्वादु व्यञ्जन विरले लोगों को ही मिल पाता है।

१८. राजिका-वटक

वाह्लीकधूमाकुलपात्रमध्ये
सराजिकं वारि किरेदणीय:।
तत्रारनालोदकपूरवर्त्ती
सराजिकोऽयं वटक: पटीयान् ।।३०।।

---

२८. हस्तलिखित प्रतिलिपियों में चतुर्थ चरण का अन्तिम भाग 'रुचिदश्चिञ्चवटक:' है, परन्तु इसके स्थान पर क्षेमकुतूहल (९.४७) में 'रुचिदाश्चर्यवटक:' पाठ उपलब्ध है। यही उचित पाठ है, क्योंकि पाकशास्त्र में प्रसिद्ध 'आश्चर्य वटक' का ही यहाँ वर्णन है। अत: औचित्यानुरोध से यहाँ क्षेमकुतूहल के अनुसार पाठशोधन किया है। (तुल०- क्षेम०- ९.४७) २९. (तुल०- क्षेम०- ९.४९)

३०. स राजिकाया-ब.१,२; सराजिकोऽयं क्षेम० ९.४५ (तुल०- क्षेम०- ९.४५)

हींग के धुएं से युक्त पात्र में राजिका (राई) से युक्त थोड़ा-सा जल डालें। इसमें पहले से तैयार बड़े डाल दें तथा पुनः इन्हें काञ्जी के जल में डालकर रखें। राई के साथ तैयार काञ्जी में डाले गए ये बड़े अरुचि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करने में बहुत ही उपयोगी होते हैं।

१९. अम्लवटक

अजाजी-वाह्लीकार्द्रक-मरिच-सिन्धूत्थभरितः
सुपाकः स्वादीयान् दधिमथितदालीविरचितः।
कृतैलासंवासः क्वथितमथिते स्वैरमुषितो
विहन्तायं साक्षादरुचिज-रुजामम्लवटकः।।३१।।

दही में मथकर तैयार की गई दाल की पिट्ठी के बड़े में जीरा, हींग, कालीमिर्च, सैन्धव लवण भरें तथा साथ में सुगन्ध के लिए इलायची भी डालें; तदनन्तर उबली हुई छाछ में रख छोड़ें। इस प्रकार तैयार किए गए अम्लवटक अरुचि को सर्वथा नष्ट कर देते हैं।

२०. पटोल (परवल) का व्यञ्जन

तलितं हिङ्गुतैलाभ्यां सैन्धवेनावचूर्णितम्।
मरिचै रुचिमाधत्ते पूर्वदंशः पटोलकः।।३२।।

हींग डालकर तेल में तला हुआ तथा सैन्धव लवण व कालीमिर्च मिलाकर स्वादिष्ठ रूप में बनाया हुआ परवल का व्यञ्जन अत्यन्त रुचिकारक व जठराग्नि-दीपन होता है।

२१. कोशातकी (तोरी) का व्यञ्जन

वाह्लीकसौरभ्यभृति प्रशस्तं शिरोन-कोशातकमुष्णतैले।
विपाचितं वेल्लजचूर्णकीर्णं रुचिं विधत्तेऽभ्यवहारकाले।।३३।।

---

३१. ०मथिते स्वैररचितो- भो., ब.१, ०मथिते स्वैरमुषितो- ब.२, (तुल०- क्षेम० ९.३९);

३३. शिरान- भो., ब.१, शिरोन- ब.२; वेल्लन- भो., ब.२, वैल्लन-ब.१, वल्लिज- क्षेम०-८.४८, वेल्लज इति शोधितपाठः। (तुलनीय- क्षेम०- ८.४८)

धारीदार तोरी की धारियों को चाकू से हटाकर उसे हींग से युक्त तेल में पका लें तथा समुचित मात्रा में वेल्लज=कालीमिर्च का चूर्ण डाल दें। इस प्रकार तैयार किया गया तोरी का व्यञ्जन भोजन-काल में अत्यन्त रुचिवर्धक होता है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कालीमिर्च के लिए वेल्लज एवं वल्लिज शब्द प्रचलित हैं। वल्लिज से तात्पर्य है- वल्लि (बेल) अर्थात् लता पर लगने वाली। इसके विपरीत हरी मिर्च या लाल मिर्च को 'क्षुपज' कहते हैं, क्योंकि वह क्षुप (पौधे) पर लगती है।

२२. वार्त्ताक (बैंगन) का व्यञ्जन

पाके हरति वार्त्ताकं तैल-वाह्लीक-सैन्धवैः।
सिद्धं मरिचसम्बद्धं कोष्णमेव रुचिप्रदम्।।३४।।

अपेक्षित मात्रा में हींग तथा सैन्धव लवण डाल कर तेल में बैंगन को पका लें। ऊपर से उचित मात्रा में कालीमिर्च का चूर्ण भी मिला दें। इस प्रकार बैंगन से बने इस व्यञ्जन को गर्मागर्म खाया जाए तो यह अतीव रुचिप्रद होता है।

२३. निष्पावक (सेम) की फली का व्यञ्जन

निष्पावकस्य तलिता नवबीजकोशी
तैलेन हिङ्गुमरिचेन च सैन्धवेन।
प्रभृष्टकल्प-तिलकल्क-कृतप्रवापा
मान्द्यं धुनोति जठरान्तरवर्त्तिवह्नेः।।३५।।

हींग, कालीमिर्च व सैन्धव लवण डालकर तेल में पकाई गई सेम की कच्ची फली का कल्क (लुगदी) बनाएं तथा उसमें तिल को हल्का भूनकर बनाया हुआ कल्क मिला दें। इस प्रकार सेम की फली से तैयार किया गया यह व्यञ्जन जठराग्नि की मन्दता को शीघ्र ही दूर कर देता है।

---

३४. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१६) ३५. (तुलनीय- क्षेम०- ८.४७)

२४. बिम्बीफल का व्यञ्जन

दलितं तलितं सरामठं नवबिम्बीफलमाप्तसैन्धवम्।
मरिचैरवचूर्णितं हरिल्लघुपाकेन करोति रोचकम्।।३६।।

ताजा बिम्बीफल (कुन्दरू) को छोटे टुकड़ों में काटकर सैन्धव लवण तथा कालीमिर्च मिलाकर तेल में हल्का पकाएं। इस प्रकार बिम्बीफल से तैयार किया गया यह व्यञ्जन बहुत ही रोचक होता है।

२५. कदलीकन्द का व्यञ्जन

कन्दः कदल्या दलितो नितान्तं सरामठश्चूतफलेन राद्धः।
उद्धूलितः सैन्धवरेणुनायं मरीचसम्पर्कित एव रुच्यः।।३७।।

कदलीकन्द (केले की जड़ में मिलने वाले कन्द) तथा आम के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक साथ पकाएं। पकाते समय इनमें हींग, सैन्धव लवण व कालीमिर्च मिलाएं। इस प्रकार कदलीकन्द व आम से तैयार किया गया यह व्यञ्जन बहुत ही रुचिकारी होता है। कदलीकन्द के गुण इस प्रकार बताए हैं-

कदल्याः शीतलो बल्यः कन्दः केश्योऽम्लपित्तजित्।
वह्निकृद्दाहहारी च सुस्वादू रुचिकारकः।। (क्षेम०-८.१९४)

अर्थात् कदली (केले) का कन्द शीतल, बल्य, केश्य (केशों के लिए हितकर), अम्लपित्तनाशक, जठराग्निदीपन, दाहनिवारक, सुस्वादु व रुचिकारक होता है।

---

३६. मरिचैरवचूर्णितं हरिल्लघु- भो., ब.१, ब.२, मरिचोद्भवचूर्णसंयुतं लघु- क्षेम०- ८.३१; अयं पाठः वरतरः। (तुलनीय- क्षेम०- ८.३१)

३७. सरामठश्चूतफलेन राद्धः- भो. ब.१, ब.२; संस्वेदितो हिङ्गुघृतेन राद्धः- क्षेम०- ८.१९३; (तुलनीय- क्षेम०- ८.१९३)

२६. कदलीफल-व्यञ्जन

सहिङ्गुतैलाक्तमपास्तवोचं मोचाफलं सैन्धवसारशालि।
मरीचचूर्णप्रतिवापयोगान्निरूढवह्निं तरली करोति।।३८।।

छिल्का उतार कर केले को हींग, सैन्धव लवण व कालीमिर्च मिलाकर तेल में पकाएं। इस प्रकार केले से तैयार किया गया यह व्यञ्जन मन्द जठराग्नि को तीव्र कर देता है।

२७. एर्वारु आदि मिश्रितशाक-व्यञ्जन

एर्वारु-कर्कारु-पटोल-बिम्बी-
वार्त्ताक-कोशातक-भूरिशाकाः।
एकीकृताः सेवितसैन्धवाद्याः
संवावदूका हि सुधारसस्य।।३९।।

एर्वारु (ककड़ी), कर्कारु (पेठा), पटोल (परवल), बिम्बी (तुण्डी/तुण्डीकेरीफल/कुन्दरू), वार्त्ताक (बैंगन), कोशातक (तोरी) इत्यादि बहुत से शाक एकसाथ मिलाएं; तदनन्तर उनमें सैन्धव लवण, हींग व कालीमिर्च आदि मसाले मिलाकर संस्कारपूर्वक शाकविधि से पकाएं। इस प्रकार अनेक शाकों से तैयार किया गया यह व्यञ्जन अमृततुल्य स्वादिष्ठ होता है तथा जठराग्नि को उद्दीप्त करता है।

२८. तण्डुल वार्त्ताक-व्यञ्जन

प्रभृष्टतण्डुलसमीकृतनालिकेर-
पिष्टं सहैव मरिचेन तथोदकेन।
वार्त्ताकमुत्तमघृतैरमुना च राद्धं
सिन्धूदरानलमिवानलमातनोति।।४०।।

---

३८. (तुलनीय- क्षेम०- ८.९५) ४०. ०घृतैरनुपाचितं यत्- क्षेम०-८.२०; ०केरं- भो., ब.१, ०केर- ब.२; (तुलनीय- क्षेम०- ८.२०)

भुने चावल को नारियल के साथ उचित मात्रा में पानी डालकर पीसें तथा इसमें अपेक्षित मात्रा में कालीमिर्च मिला दें। इन सबको उचित परिमाण में बैंगन मिलाकर घी में पकाएं। इस प्रकार तैयार यह व्यञ्जन जठराग्नि को वाडवाग्नि (समुद्र के जल में विद्यमान रहने वाली तीव्र अग्नि) के समान प्रचण्ड कर देता है।

२९. करेले का व्यञ्जन

विदलितमुखमीषत् कारवेल्लं कठोरं
विपुल-विमल-तैले साधितं सैन्धवेन।
भरित-मरिचचूर्णं सौरभेणातिपूर्णं
तदखिलरसवर्गे वामतां सन्तनोति।।४१।।

ताजा करेला लेकर उसके मुख अर्थात् डंठल वाले भाग को काटकर अलग कर दें। तत्पश्चात् उसमें कालीमिर्च का चूर्ण भर दें तथा हींग भी मिला दें। तदनन्तर तेल में पकाएं। इस प्रकार करेले से तैयार किया गया यह व्यञ्जन निखिल व्यञ्जनों के साथ स्पर्द्धा करने वाला अति स्वादु व जठराग्नि-दीपन होता है।

३०. पेठे का व्यञ्जन

विदार्य कूष्माण्डमखण्डखण्डं
विपाचितं रामठतैलयोगे।
विभावितं वेल्लजसैन्धवाभ्या-
मास्वादित: पाणिलिह: करोति।।४२।।

---

४१. तदखिलरसवर्गे वामतां सन्तनोति- भो., ब.१, ब.२, रसनाग्रं व्यग्रतामातनोति- भो.-पाठान्तरनिर्देश:। पुलकितरसनाग्रं लोलतामातनोति- क्षेम०-८.६८। (तुलनीय- क्षेम०- ८.६८)

४२. ०स्वादत:- भो., ब.१, ०स्वादित:- ब.२।

स्वच्छ किए पेठे को बिना छिल्का उतारे हींग के साथ तेल में पकाएं; तदनन्तर इसमें उचित मात्रा में वेल्लज (कालीमिर्च) व सैन्धव लवण मिला दें। इस प्रकार पेठे से तैयार किया गया यह व्यञ्जन स्वाद के कारण खाने वालों को अंगुलियां चाटने के लिए विवश कर देता है।

३१. कर्कोटकी (ककोड़ा) का व्यञ्जन

ईषद्विदार्य मरिचैः परिपूरितास्यं
तैलेन राद्धमथ सैन्धवजातयोगम्।
वाह्लीकतोयपृषता विहिताभिषेकं
कर्कोटकीफलमिदं रुचिपूरणाय।।४३।।

कर्कोटकी (ककोड़ा) फल को फाड़कर उसमें उचित मात्रा में कालीमिर्च भर दें। तत्पश्चात् इसमें समुचित मात्रा में सैन्धव लवण एवं हींग-मिश्रित जल डालकर तेल में पकाएं। इस प्रकार कर्कोटकी फल द्वारा तैयार किया यह व्यञ्जन भोजन में अत्यन्त रुचिवर्द्धक होता है तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

३२. वास्तुक (बथुए) का व्यञ्जन

कृतयवस-विवेकाम्लान-वास्तूकशाकं-
क्वथित-विमलतैल-प्राप्तहिङ्गुप्रसङ्गम्।
लवण-धनिकजुष्टं शृङ्गवेरोपसृष्टं
चपलयति रसज्ञां वीक्षणादेव पुंसाम्।।४४।।

खेत से ताजा बथुआ लाएं। इसमें से घास व तिनके को सावधानी-पूर्वक अलग कर इसे पानी से स्वच्छ कर लें। तदनन्तर इसे स्वच्छ तेल में

---

४३. रुचिपूरणाय- भो., ब.१, ब.२, रुचिकृन्नराणाम्- क्षेम ८.७०।
(तुलनीय- क्षेम०- ८.७०) ४४. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१०३)

हींग, सैन्धव लवण, धनियां व अदरक के साथ पकाएं, इस प्रकार बथुए से तैयार किया गया यह व्यञ्जन देखने मात्र से ही मनुष्यों की रसना (जिह्वा) को चञ्चल बना देता है, अर्थात् भोजन में रुचि पैदा करता है तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

३३. चौलाई का व्यञ्जन

कतिपय-करमर्दकैरुपेतं नवदल-कोमल-तण्डुलीयशाकम्।
तिलरसपरिपाकहिङ्गुसङ्गि लवणविपाचितमग्निमान्द्यमन्थि।।४५।।

ताजा कोमल पत्तों वाले तण्डुलीय (चौलाई) के शाक को स्वच्छ कर, उसमें अपेक्षानुसार कुछ करमर्दक (करौंदे) के फल मिला लें; तदनन्तर इसे हींग व सैन्धव लवण के साथ तिल के तेल में पकाएं। इस प्रकार चौलाई से तैयार किया गया यह व्यञ्जन जठराग्नि की मन्दता को नष्ट कर देता है।

३४. कासमर्दी (कसौंदी) का व्यञ्जन

पत्राधिका प्रथमकन्दलकासमर्दी-
पूली गलद्विमलतण्डुलपिष्टलिप्ता।
सिद्धा घृतेन मरिचैरवचूर्णिता च
जायेत सापि रुचिकृत् खलु सज्जनानाम्।।४६।।

पत्ते के गुच्छ से युक्त नए कन्दल (अंकुरों) वाले कासमर्दी (कसौंदी) को स्वच्छ चावल के आटे से परिवेष्टित कर लें, लपेट लें; तदनन्तर उचित मात्रा में कालीमिर्च का चूर्ण डालकर घी में पकाएं। इस प्रकार कासमर्दी से तैयार किया गया यह व्यञ्जन विशेष रुचिकारक व जठराग्नि-दीपन होता है।

---

४५. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१०६)
४६. पत्राधिका प्रथमकोमल- क्षेम०-८.१०८; ०काशमारी- भो., ब.१, ०शाकमर्द्दी- ब.२, ०कासमर्द्दी- क्षेम०-८.१०८; (तुल०-क्षेम०- ८.१०८)

३५. कर्कारु (पेठे) का व्यञ्जन

कर्कारुखण्डं घृतदुग्धराद्धं
विभावितं वेल्लजशर्कराभ्याम्।
कृतैलवासं च कदूष्णमेतत्
प्रतिक्षणं रोचकमातनोति।।४७।।

घृत व दुग्ध में पकाए गए कर्कारु (पेठे) के खण्डों में वेल्लज (कालीमिर्च) व शर्करा मिलाकर इलायची भी डाल दें। इस प्रकार पेठे से तैयार किया गया यह व्यञ्जन निरन्तर रुचि को बढ़ाता है व क्षुधा को प्रदीप्त करता है।

३६. रम्भाकुसुम (केले के फूलों) का व्यञ्जन

जलेन राद्धं शतधा निकृत्तं
सितान्यरम्भाकुसुमं नवीनम्।
सितान्तरक्षीरविपाचितं त-
न्मनो धिनोति प्रचितं मरीचैः।।४८।।

छोटे-छोटे टुकड़ों में काटे हुए केले के ताजे सितान्य (लालिमायुक्त) फूलों को जल में पकाएं। तदनन्तर इनमें शर्करा व कालीमिर्च डालकर पुनः दूध में पकाएं। इस प्रकार कदली-पुष्पों से तैयार किया गया यह व्यञ्जन अतीव मनभावन व रुचिकारक होता है। सितान्य का अर्थ है- सित अर्थात् श्वेत वर्ण से भिन्न लाल वर्ण वाला।

३७. मुनिवृक्षफल-व्यञ्जन

मुनिफलदलशाकं स्वेदितं पाणिपिष्टं
क्वथित-विमल-तैले हिङ्गुना लब्धवासम्।

४७. 'कर्कारुखण्डं' इत्यस्य स्थाने 'विपाण्डुखण्डं' इति क्षेमकुतूहले- ८.८७; (तुलनीय- क्षेम०- ८.८७)

लवण-मरिचपातस्वादुवत्तां दधानं
भवति रुचिदमुच्चैराम्रचूर्णेन राद्धम्।।४९।।

मुनिवृक्ष (अगस्त्य वृक्ष) के फल के छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें थोड़ा-सा पानी डालकर स्विन्न कर लें अर्थात् हल्का-सा पका लें; तदनन्तर उन्हें उबलते हुए तेल में हींग डालकर छौंक लें तथा सैन्धव लवण व कालीमिर्च का चूर्ण उचित मात्रा में मिला लें। इनमें थोड़ा-सा आम्रचूर्ण (अमचूर) भी डाल दें। इस प्रकार मुनिवृक्ष के फलों से तैयार किया गया यह व्यञ्जन बहुत ही रुचिप्रद होता है।

३८. मूँग के पर्पट (पापड़)

मुद्गजीरक-वाह्लीक-स्वर्जिका-मरिचाञ्चिताः।
अरोचक-जिगीषूणां पर्पटाः पुरतो भटाः ।।५०।।

मूँग का आटा, हींग, स्वर्जिकाक्षार (सज्जीखार) एवं कालीमिर्च मिलाकर तैयार किए गए पर्पट (पापड़) अरोचक रोग को जीतने के इच्छुक लोगों के लिए मुख्य पराक्रमी भट (योद्धा) के रूप में सहायक होते हैं, अर्थात् इनके सेवन से भोजन के प्रति अरुचि नष्ट हो जाती है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

३९. कुरवटी

आह्लादिका युवदृशां मृदुना स्वरेण
दष्ट्वा द्विजैरपि विचूर्णित-सर्वगात्रा।
स्नेहाधिका विहसिता रुचिराजपुत्र्याः
शुश्रूषिका कुरवटी रुचिरा वधूटी।।५१।।

---

४९. मुनिफलदल- भो., ब.१, ब.२; फलमथदल- क्षेम०- ८.७५; (तुलनीय- क्षेम०- ८.७५)

५०. 'चारुजीरक' इति हस्तलिखित-पुस्तिकागतः पाठः, इह तु क्षेमकुतूहलानुसारितया 'मुद्गजीरक' इति पाठः स्वीकृतः। (तुलनीय- क्षेम०- ६.३९)

५१. दृष्ट्वा इति हस्तलिखित-पुस्तिकासु पाठः; दष्ट्वा इति शोधितपाठः। इदं खलु

जैसे सुन्दरी नायिका मृदु स्वर से युवजनों को आह्लादित करती है तथा स्नेहबहुला व हासपूर्णा वह दन्तक्षत आदि से व्रणित की जाती है। इसी प्रकार देखने में शोभन व मृदु स्वर से आह्लादित करने वाली खाते समय दाँतों द्वारा चूर्णित की जाने वाली खिली हुई कुरवटी रुचिरूपी राजपुत्री की सेविका के समान होती है, अर्थात् यह वटी अतीव मनोहर आह्लादक व रुचिजनक होती है।

४०. कर्चरी

क्षाराम्लकृतसंस्कारसिद्धा तैलविपाचिता।
अरोचकनिमित्तानां कर्त्तरी कटुकर्चरी।।५२।।

क्षार (सज्जीक्षार) व अम्ल (निम्बू आदि की खटाई) द्वारा संस्कारित तथा तेल में पकाई गई कटुकर्चरी (कचरी) अरोचक (अरुचि) रोग के निमित्तों (कारणों) के लिए कर्त्तरी (कैंची) का काम करती है, अर्थात् भोजन में अरुचि को नष्ट कर क्षुधा को उद्दीप्त कर देती है।

४१. धात्री (आंवले) का व्यञ्जन

अङ्गारपाकदलितानि फलानि धात्र्या-
स्तैलेन जीरलवणेन विभावितानि।
वाह्लीकधूप-धयनाधिक-सौरभाणि
सन्धुक्षयन्ति जठरानलमाहृतानि।।५३।।

अंगारों के ऊपर पकाने से फटे हुए धात्री-फलों (आंवले के फलों) में जीरा व सैन्धव लवण मिलाएं तथा हींग की धूप देकर इन्हें सुगन्धित करें।

दंश धातोः क्त्वान्तं रूपम्। (तुलनीय- क्षेम०- ९.३०)

५२. कटुचर्चरी- भो., ब.१, ब.२; कटुकर्चरी इति सम्पादकद्वारा शोधितः पाठः। कर्त्तरी कटुकर्चरी इत्यस्य स्थाने क्षेमकुतूहले (६.४८) कर्चरी कण्ठकर्त्तरी इति पाठो दृश्यते। (तुलनीय- क्षेम०- ६.४८)

५३. (तुलनीय- क्षेम०- ८.६४)

इस प्रकार तैयार किए गए स्वादिष्ठ आमलकी फल जठराग्नि को प्रदीप्त कर देते हैं, अर्थात् अरुचि को दूर कर भूख बढ़ाते हैं।

४२. वार्त्ताक-व्यञ्जन

निर्धूमानलपाचितमामं वार्त्ताकमुज्झितं बीजैः।
आर्द्रक-निम्बुक-सैन्धव-तैलैरालोडितं रुचिरम्।।५४।।

जिसमें अभी बहुत बीज न पड़े हो अर्थात् कच्ची अवस्था वाले बैंगन को धूम रहित अंगारों पर पका लें। तदनन्तर अदरक, निम्बू तथा सैन्धव लवण मिलाकर तिल के तेल में छौंक लें, बघार लें। इस प्रकार कच्चे बैंगन से तैयार किया गया यह व्यञ्जन अत्यन्त रुचिवर्द्धक होता है।

४३. तण्डुलीय (चौलाई) का व्यञ्जन

आलोहितं कठिन-कोमल-तन्दुलीय-
मुद्वाष्पितं सलिलकाञ्जिकमेलकेन।
पिण्डीकृतं लवण-तैल-परीतमेत-
न्मन्दाग्निमङ्कुरयति श्रितहिङ्गुवासम्।।५५।।

कुछ लालिमा युक्त कोमल पत्तों वाले चौलाई के शाक को जल व काञ्जी में उबाल लें; तदनन्तर पानी निचोड़कर सैन्धव लवण एवं हींग मिलाकर तेल में छौंक लें। इस प्रकार चौलाई से तैयार किया गया यह व्यञ्जन मन्द जठराग्नि को तीव्र कर देता है।

४४. कुटजपुष्प-व्यञ्जन

काञ्जिकेन मधुरेण मुहूर्त्तं स्वेदितः कुटजपुष्पगुलुच्छः।
पीडितः सलवणः सह तैलैर्याति हिङ्गुसुरभी रुचिमत्त्वम्।।५६।।

५४. (तुलनीय- क्षेम०- ८.२७)
५५. आलोहितं कठिन०- ब.१, आलोडितांकुलित०- भो.। (क्षेम०- ८.१०५)
५६. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१६३)

कुटजपुष्प के गुच्छे को मुहूर्त्त भर (थोड़ी देर) मधुर काञ्जी में डालकर स्विन्न कर लें, अर्थात् कोमल बना लें। तदनन्तर इसमें सैन्धव लवण मिलाकर हींग के साथ तेल में छौंक लें। इस प्रकार तैयार किया गया कुटजपुष्पों का यह व्यञ्जन अत्यन्त रुचिकारक होता है तथा क्षुधा को उद्दीप्त करता है।

४५. आम्रपल्लव-व्यञ्जन

स्विन्ना निष्पीडिताः कामं कोमलाश्चूतपल्लवाः।
तैल-सिन्धूत्थ-सम्मिश्रा रुच्या रामठवासिताः ।।५७।।

आम के कोमल पल्लवों (कोंपलों) को पका लें; तदनन्तर निचोड़कर उचित मात्रा में सैन्धव लवण मिला लें एवं हींग के साथ तेल में छौंक लें। इस प्रकार तैयार किया गया आम्रपल्लवों का यह व्यञ्जन विशेषरूप से रुचिवर्द्धक होता है।

४६. कोलशिम्बी-व्यञ्जन

काकाण्डोला-फलमविकलं कोमलं स्विन्नमीष-
त्तैले हिङ्गुप्रणयिनि ततो वेसवारेण राद्धम्।
मध्ये न्यस्तं क्वथितमथिते वासिते रामठेन
स्वादं स्वादं विधुवति शिरः स्वर्गराजो नितान्तम्।।५८।।

काकाण्डोला (कोलशिम्बी/सुअरा सेम) की साबुत कोमल फली को

---

५७. स्विन्ना निष्पीडिताः- भो., ब.१, क्षेम०- ८.१७९, स्विन्ननिष्पीडिताः- ब.२, (तुलनीय- क्षेम०- ८.१७९)

५८. वेषवारेण- भो., ब.१, वेसवारेण- ब.२, 'स्वादुं-स्वादुं'- इति हस्तलिखितपुस्तिकासु पाठः। 'स्वादं स्वादं'- इति शोधितपाठः णमुलन्तः। स्वादन्स्वादन्निभृत- इति क्षेमकुतूहले (८.६०) दृश्यते। (तुलनीय- क्षेम०- ८.६०)

उचित परिमाण में हींग मिले तेल में स्विन्न कर लें, हल्का-सा पका लें। पकाते समय इसमें वेसवार (जीरा-धनियाँ आदि विशिष्ट मसालों का मिश्रण) मिला दें। तदनन्तर इसे हींग मिलाकर उबाले हुए तक्र में डाल दें। इस प्रकार तैयार किए गए कोलशिम्बी के इस व्यञ्जन को खाते समय पुनः-पुनः आस्वादन करता हुआ स्वर्ग का राजा इन्द्र भी आनन्द में झूमने लगता है।

वेसवार- अनेक मसालों का मिश्रण वेसवार नाम से प्रसिद्ध है। इसका स्वरूप निम्न प्रकार से है-

सैन्धव-त्रिकटु-धान्यजीरकैर्दाडिमी-रजनि-रामठान्वितैः।
पाचनोऽथ जठराग्निदीपनो वेसवार उदितो मनीषिभिः।।

(अजीर्णामृतमञ्जरी-४८)

सैन्धव (सेंधा नमक), त्रिकटु (सम मात्रा में मिली सोंठ, काली मिर्च व पीपल का चूर्ण) धनिया, जीरा, अनारदाना, हल्दी, हींग, इन सबके मिश्रण से बना वेसवार (वेशवार) आम-पाचक व जठराग्नि-दीपन होता है, ऐसा आयुर्वेद-मनीषियों का कथन है। वेसवार का एक अन्य लक्षण इस प्रकार भी मिलता है-

विश्वौषध-चपलोषण-सैन्धव-धान्याक-हिङ्गु-राजीभिः।
करकाजाजियुताभिर्गदितो मुनिभिस्तु वेशवारोऽयम्।।

(अजीर्णामृतमञ्जरी, पृ. ३५)

विश्वौषध (सोंठ), चपला (पीपल), ऊषण (कालीमिर्च), सैन्धव लवण, हींग, राई, करक (अनार) एवं अजाजी (जीरा), इन सबके मिश्रण से वेसवार (गर्म मसाला) बनता है।

---

५९. अगारजन्याम् इति अस्फुटः पाठः। क्षेमकुतूहले तु 'दण्डाहतं च मृदुपाकमवाप्यते हि' इति पाठो दृश्यते। अयमपि दोषयुक्त एव। (तुलनीय- क्षेम०- ८.३९)

४७. कोशातकी-व्यञ्जन

निश्शोधिताखिलशिरावलि वृत्तखण्डं
दण्डाहतेन कृतपाकमगारजन्याम्।
हिंग्वा गृहीतलवणं सुरभीकृतं च
कोशातकी-फलमिदं मरिचेन रुच्यम्।।५९।।

तोरी की धारियों को चाकू से हटाकर गोलाई में उसके टुकड़े बना लें; तत्पश्चात् हल्दी डाल कर दण्डाहत (छाछ) में पका लें। इसमें सैन्धव लवण व कालीमिर्च मिला लें एवं हींग के साथ छौंक लें। इस प्रकार तैयार किया गया कोशातकी (तोरी) का यह व्यञ्जन अत्यन्त रुचिवर्द्धक होता है।

दण्डाहत– आयुर्वेद में तक्र का एक नाम दण्डाहत है। तक्र दण्ड (मन्थनदण्ड/रयी) द्वारा आहत किया जाता है, आलोडित-विलोडित किया जाता है। अत: यह तक्र का अन्वर्थक (सार्थक) नाम है।

४८. सेम का व्यञ्जन

हरितभरितशम्बा ग्रामनिष्पावकस्य
प्रथममुदकसिद्धा कालशेयेन रुद्धा।
लवण-मरिच-सङ्गात्तैलहिङ्गुप्रसङ्गा-
च्छिखरयति बुभुक्षां कुर्वत: सापि वीक्षाम्।।६०।।

ग्राम के हरे-भरे खेत में से सेम की ताजी फलियाँ लें तथा उन्हें पानी में उबालें; तदनन्तर पानी निकाल कर उन्हें छाछ में पकाएं। इनमें सैन्धव लवण व कालीमिर्च मिलाकर हींग के साथ छौंक लें। इस प्रकार तैयार किया गया सेम की फली का यह व्यञ्जन देखने भर से ही अरुचि को दूर कर क्षुधा को विशेष रूप से जागृत कर देता है।

---

६०. (तुलनीय- क्षेम० ८.७२)

४९. पटोल (परवल) का व्यञ्जन

नवं पटोलं विहिताल्पखण्डं विशुद्धदण्डाहतजातपाकम्।
व्याघारितं हिङ्गुकणेन तैले ससैन्धवं बोधयति क्षुधां तत्।।६१।।

ताजा कोमल पटोल (परवल) के फल के छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर स्वच्छ दण्डाहत (तक्र/छाछ) में पका लें; तदनन्तर सैन्धव लवण मिलाकर हींग के साथ तेल में बघार लें। इस प्रकार तैयार किया गया परवल का यह व्यञ्जन अरुचि को नष्टकर क्षुधा को जागृत कर देता है।

५०. पिष्टफल (पेठे) का व्यञ्जन

पिष्टाभिधानममलं फलमस्तबीजं
तक्रे समं हरितधान्यकसैन्धवाभ्याम्।
संसाधितं सुरभितं नवरामठेन
जिह्वालतां तदपि नर्त्तयति प्रकामम्।।६२।।

पिष्ट (पेठा) नामक फल के बीज निकालकर उसे हरे धनियें एवं सैन्धव लवण के साथ तक्र में पका लें; तदनन्तर हींग के साथ तेल में छौंक लें। इस प्रकार तैयार किया गया पिष्टफल का यह व्यञ्जन जिह्वालता को चञ्चल कर नचाने लगता है अर्थात् अरुचि को नष्ट कर क्षुधा को उद्दीप्त कर देता है।

पिष्टफल नाम से निघण्टुओं में कोई फल वर्णित नहीं है। यहाँ यह शब्द पेठे के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि पेठे का स्वरूप पकाने पर पिष्ट (आटे) जैसा हो जाता है। ध्वनिसाम्य से भी पेठा शब्द पिष्ट से रूपान्तरित हुआ प्रतीत होता है।

५१. वार्त्ताक व्यञ्जन

वार्त्ताकं दलितं न वृन्तचलितं संस्वेदितं वारिणा
शुद्धोदस्विति धान्यकार्द्रक-निशासम्पर्कितं पाचितम्।

सक्षारं मरिचावचूर्णितमथो तैलेन हिंग्वा लस-
द्वासं दारुमयेऽपि पुंसि कुरुते घ्रातं क्षुधाबोधनम्।।६३।।

ताजा बैंगन को वृन्त (डंठल) के साथ ही पानी में हल्का-सा पकाएं; तदनन्तर स्वच्छ तक्र (छाछ) में धनियां, अदरक व हल्दी के साथ पुन: पकाएं। इसमें क्षार (सज्जीक्षार) व कालीमिर्च मिलाकर हींग के साथ तेल में छौंक लें। इस प्रकार बैंगन से तैयार किया गया यह स्वादु व्यञ्जन सुगन्ध लेने भर से ही दारुमय (काष्ठ के बने) मनुष्य में भी भूख जगा देता है, अर्थात् यह अत्यन्त स्वादिष्ठ व्यञ्जन गन्ध के प्रभाव से ही जडतुल्य सर्वथा मन्द जठराग्नि को भी चेतन कर देता है एवं भोजन में रुचि जागृत कर देता है। उक्त कथन इस व्यञ्जन का प्रभावातिशय को सूचित करने के लिए है।

५२. गिरिमल्लिका-फल का व्यञ्जन

सलिलपरिचितं मुखे कृशानो-
रथ मथितेन विपाचितं सुधावत्।
सलवणमरिचं सहिङ्गुवासं
रुचिजनकं गिरिमल्लिका-फलं स्यात्।।६४।।

गिरिमल्लिका (कुटज वृक्ष) के फल को पानी में हल्का पका लें; तदनन्तर तक्र में पकाएं। इसमें सैन्धव लवण व कालीमिर्च डालकर हींग के साथ छौंक लें। इस प्रकार तैयार किया गया गिरिमल्लिका-फल का यह व्यञ्जन अमृत तुल्य स्वादिष्ठ व रुचिजनक होता है।

५३. बिम्बीफल-व्यञ्जन

बिम्बीफलं सकलमेव निधाय तैले
तप्तं ससैन्धवमिदं मुहुरुत्क्षिपेच्च।

---

६३. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१४)   ६४. (तुलनीय- क्षेम०- ८.९३)

सोपस्करं क्वथितमत्र निपात्य तक्रं
व्याघारयेत्तदपि दीपनमेव वह्नेः।।६५।।

बिना टुकड़े किए साबुत बिम्बीफल (कुन्दरू) को तिल के तेल में पकाएं; तदनन्तर सैन्धव लवण व अन्य अपेक्षित मसाले मिलाकर उबली हुई छाछ उसमें डाल दें तथा तेल में बघार लें। इस प्रकार तैयार किया गया बिम्बी फल का यह व्यञ्जन अरुचि को दूर कर जठराग्नि को उद्दीप्त कर देता है।

५४. वाष्पी (बाफली) का व्यञ्जन

वाष्पीशाकं गतचरदिनोदश्विदारब्धपाकं
साकं चूर्णैर्लवणसहितैः शृङ्गवेरप्रसूनैः।
मध्येतैलं गतवति लये कर्करे हिङ्गुजन्ये
तेनाघ्रातं नयति सुतरामाश्रयाशप्रकाशम्।।६६।।

वाष्पी (बाफली) के शाक को पूर्व दिन के बासी तक्र (छाछ) में पका लें। इसमें सैन्धव लवण, (कालीमिर्च आदि मसालों के चूर्ण) व अदरक के टुकड़े डालकर हींग के साथ तेल में बघार लें। इस प्रकार तैयार यह वाष्पीशाक का व्यञ्जन सुगन्ध मात्र से ही अरुचि को दूर करता है तथा जठराग्नि को अत्यन्त प्रदीप्त कर देता है।

५५. निम्बपत्र-व्यञ्जन

निम्बस्य कोमलतराणि दलानि तैले
पक्त्वा क्षिपेत्तदनु पाचितमेव तक्रम्।
शालेयतण्डुलकणैः सह सैन्धवेन
व्याघारितं तदतिरोचनमेव लेह्यम्।।६७।।

---

६५. (तुलनीय- क्षेम०- ८.३२)
६६. गतवति लये- इति उपलब्धपाठः, अस्य स्थाने 'गतिवति लयं' इति स्यात्।
६७. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१०१)

नीम की कोमल कोंपलें तैल में पका लें तथा उसमें पकी हुई छाछ डाल दें। तदनन्तर सैन्धव लवण के साथ उचित मात्रा में चावल डाल कर तेल में बघार लें। इस प्रकार नीम की कोंपलों से तैयार किया गया यह लेह्य रूप व्यञ्जन अत्यन्त रुचिजनक होता है।

५६. अरणीपत्र-व्यञ्जन

अग्निमन्थ-नवपल्लव-सिद्धं तैलपाचितमुदश्विति राद्धम्।
क्षिप्तसैन्धवरजो नवहिंग्वा जायते सुरभितं रुचिकारि।।६८।।

अग्निमन्थ (अरणी) के कोमल पल्लवों (पत्तों) को तेल में पका लें; तदनन्तर इनमें छाछ डालकर पुनः पकाएं तथा उचित मात्रा में सैन्धव लवण मिलाकर (भुनी) हींग से सुगन्धित कर लें। इस प्रकार अरणी के पत्तों से तैयार किया गया यह व्यञ्जन विशेष रूप से रुचिकारक होता है।

अरणी को अग्निमन्थ कहते है; क्योंकि प्राचीनकाल में इसकी लकड़ियों का मन्थन (घर्षण) करके यज्ञ में अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती थी।

५७. सूरणकन्द-व्यञ्जन

तैलेन कन्दस्तलितो यथावत्
तक्रेण राद्धः सह सैन्धवेन।
सुगन्धिरेलारजसा निकामं
नखम्पचः स्वादुतरः प्रलेहः।।६९।।

कन्द (सूरण कन्द) को विधिपूर्वक तेल में तल कर सैन्धव लवण के साथ तक्र में पकाएं तथा इलायची का चूर्ण डालकर सुगन्धित कर लें। इस प्रकार प्रलेह के रूप में तैयार किया गया सूरण कन्द का यह व्यञ्जन गर्मा-गर्म रूप में खाने से अति स्वादु व रुचिकारक होता है।

५८. सारिवाफल का व्यञ्जन

अजाजी-धान्याकस्तबक-रजनी-तण्डुलकणै:
समं पिष्टं तक्रं क्वथितमथितं सारिवफलम्।
युतं सिन्धूत्थेन ज्वलित-नववाह्लीकसुरभि:
प्रलेह: सन्देहं जनयति सुधाया निजरसे।।७०।।

जीरा, हरा धनियाँ, हल्दी व चावल को एक साथ पीसकर छाछ में पकाएं व साथ में सारिवाफल के टुकड़े डाल दें। इनमें सैन्धव लवण मिलाकर हींग के साथ तेल में छौंक लें। इस प्रकार तैयार किए गए इस स्वादिष्ठ प्रलेह को देखकर अमृत के मन में भी अपनी स्वादुता के विषय में सन्देह होने लगता है, अर्थात् यह अमृत के समान स्वादिष्ठ होता है तथा अरुचि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है।

५९. बृहतीफल का व्यञ्जन

तोयाल्पसिद्धबृहतीफलखण्डमिश्रं
दण्डाहतं चिरविपाचितमार्द्रकेण।
चूर्णेन सैन्धवभवेन विभावितं च
वह्निं प्रपञ्चयति वायुरिवाचिरेण।।७१।।

बृहतीफल (बड़ी कण्टकारी के फल) को स्वच्छ कर छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर जल में हल्का पका लें; तदनन्तर सैन्धव लवण मिला कर इन्हें दण्डाहत (छाछ) में डालकर अच्छी तरह पकाएं। इस प्रकार तैयार किया गया बृहती फल का यह व्यञ्जन उसी प्रकार जठराग्नि को बढ़ाता है, जैसे कि वायु अग्नि को।

---

७०. तन्दुलकणै:-भो., ब.२, तण्डुलकणै:- ब.१, तण्डुलकणै: इत्यस्य स्थाने मेथिककणै: इति क्षेमकुतूहले (११.२) पाठ:। (तुलनीय- क्षेम०- ११.२)
७१. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१२)

६०. तक्र-आर्द्रक व्यञ्जन

तक्रं चिरक्वथितमर्पितशृङ्गवेरं
निष्पिष्ट-सैन्धवरजो-मरिचाल्पचूर्णम्।
एलाभवेन रजसा सुरभीकृतं तत्
तूर्णं तरङ्गयति भुक्तवतां रसज्ञाम्।।७२।।

अदरक, सैन्धव लवण व थोड़ी मात्रा में कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर तक्र (छाछ) को अच्छी प्रकार से पकाएं। इसे इलायची के चूर्ण से सुगन्धित करें। इस प्रकार तैयार किया गया यह व्यञ्जन भोजन करने वालों की रसना को शीघ्र ही चपल बना देता है, अर्थात् अरुचि दूर कर क्षुधा जागृत कर देता है।

६१. नारंगकेसर (सन्तरे की कलियों) का व्यञ्जन

नारङ्गकेसरमपाकृतबीजपुञ्जं
योऽश्नाति खण्डमरिचोत्थितचूर्णमिश्रम्।
अन्नं गले विशति तस्य नरस्य शीघ्र-
माहन्यमानमिव तेन चपेटकेन।।७३।।

बीज निकालकर नारंग (सन्तरा) के केसर (अन्दर की कली के रसदार रेशों) को जो व्यक्ति खण्डमरिच (कालीमिर्च) का चूर्ण मिलाकर खाता है, उस व्यक्ति के गले में अन्न शीघ्र ही तीव्र गति से प्रवेश करता है, मानो चपत खाकर दौड़ रहा हो। भाव यह है कि इस व्यञ्जन से अरुचि दूर होकर क्षुधा तीव्र हो जाती है एवं व्यक्ति अन्न खाने के लिए आतुर हो जाता है।

६२. जम्बीरी निम्बू का व्यञ्जन

विभावितं शुभ्रसितामरीचै-
रेलारजोभावनयातिरुच्यम्।

---

७२. निःपिष्ट०- ब., भो.। निष्पिष्ट० इति शोधितपाठः। (तुल०- क्षेम०- ११.१)
७३. (तुलनीय- क्षेम०- ११.४)

जीवातवे तस्य नरस्य भोक्तु:
जम्बीरजं केसरमाद्रियन्ते।।७४।।

शुभ्र खाँण्ड, कालीमिर्च व इलायची के चूर्ण को जम्बीर (जम्बीरी निम्बू) के केसरों (अन्दर के रस भरे रेशों) में मिलाकर सेवन करें। यह योग अरुचि को दूर करने में विशेष रूप से प्रभावकारी होता है।

यह पद्य क्षेमकुतूहल (११.६) से उद्धृत है। इसके स्थान पर प्रस्तुत पुस्तिका की हस्तलिपि (ब.२) में उपलब्ध पद्य इस प्रकार से है-

विभावितं तारसितामरीचैरेलारजोभावनयातिरुच्यम् ।
जीरावृतं छेत्ति नरस्य भोक्तुः पचेलिमं कार्मरमग्निमान्द्यम्।।७४।।

६३. तिलकल्क-व्यञ्जन

तिलकल्कं सनिम्बूक-सैन्धवार्द्रकमत्ति यः।
तस्यामितम्पचः पुंसो वह्निर्यदि स कल्पते।।७५।।

जो व्यक्ति सैन्धव लवण, अदरक व निम्बू का रस डालकर बनाए गए तिलकल्क अर्थात् कूट-पीस कर तैयार की गई तिल की लेही जैसी बनाकर सेवन करते हैं, उनका खाया हुआ अन्न शीघ्र ही पच जाता है।

६४. बीजपूरकेसर (बिजौरा नींबू के केसर) का व्यञ्जन

अश्नतः कृतसंस्कारं बीजपूरस्य केसरम्।
शाकिनीभिरिवाकृष्टं विशत्युदरमोदनम्।।७६।।

---

७४. चिंचांचितं तारसिता०...कामरमग्नि०- भो., ब.१। ०कार्मर- ब.२;
७४. यह पाठ दोषग्रस्त व अस्पष्ट है। अत: इसके स्थान पर क्षेमकुतूहल (११.६) से पूर्वोद्धृत पद्य लिया गया है। (तुलनीय- क्षेम०- ११.६)
७५. सनिम्बूकं सैन्धवा०- भो., ब.१, सनिम्बूक-सैन्धवा०- ब.२; ०कसंयुतम्-भो., ब.१, ०कमत्ति यः- ब.२; क्षेमकुतूहले-(११.११) चतुर्थचरण इत्थम्- 'हेमन्तेऽग्निः प्रजायते'। (तुलनीय- क्षेम०-११.११)

बीजपूर (बिजौरा निम्बू) के केसर (अन्दर के रसदार रेशों) को संस्कारित करके अर्थात् भुनी हींग व भुने जीरे से सुगन्धित कर सैन्धव लवण के साथ सेवन करने वाले व्यक्ति की क्षुधा अति तीव्र हो जाती है तथा ओदन (भात) उदर में इस प्रकार जाता है कि मानो शाकिनियां ही अन्दर खींच रही हों।

शाकिनी- तन्त्रग्रन्थों में डाकिनी, शाकिनी आदि का वर्णन मिलता है। वहाँ शाकिनी दुर्गादेवी की सेविका के रूप में चित्रित की गई है। शाकिनियां संख्या में अनेक मानी जाती हैं।

६५. आम्रातक-व्यञ्जन

आम्रातकस्य नवताम्ररुचः प्रवालाः
खण्डीकृता लवणभिन्ननिपीडिताश्च।
वाह्लीकधूपनजुषस्तिलतैलदग्धाः
सन्दीपयन्ति पवनस्य सखायमेते।।७७।।

आम्रातक (आमड़ा) वृक्ष के नवीन लाल कान्ति वाले कोपलों को पानी से स्वच्छ कर काट लें तथा सैन्धव लवण के साथ पीस लें। इन्हें हींग की धूप देकर तिल के तेल में दग्ध कर लें अर्थात् छौंक लें। इस प्रकार व्यञ्जन के रूप में तैयार किए गए आम्रातक के पल्लव (कोंपल) जठराग्नि को विशेष रूप से प्रदीप्त करते हैं।

६६. कूष्माण्ड-व्यञ्जन

कूष्माण्डखण्डानि ससैन्धवानि
तनूनि सम्मर्दनपीडितानि।
जम्बीरनीरस्रुतशृङ्गवेरैः
समानि वह्नेरति दीपनानि।।७८।।

---

७७. लवणभिन्ननिपीडिताश्च- भो., ब.१, ब.२, लवणमिश्रितपिण्डिताश्च- क्षेम० ११.२०; ०दिग्धाः-ब.२, ०दग्धाः-भो., ब.१; (तुल०- क्षेम०- ११.२०)

कूष्माण्ड (पेठे) के छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर सैन्धव लवण, निम्बू-रस व अदरक के साथ पीस लें। अवलेह रूप में तैयार किया गया यह व्यञ्जन अरुचि दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

६७. कच्ची मूली का व्यञ्जन

शकलितमतिसूक्ष्मं बालमूलस्य मूलं
लवणमथितमुच्चैः पीडितं पाणियन्त्रे।
सुरभितमथ हिंग्वा तैलनिम्बूरसाक्तं
भवति जठरवह्नेस्तूर्णमुद्दीपनाय।।७९।।

कच्ची मूली को छोटे-छोटे पतले टुकड़ों में काट लें। इनमें सैन्धव लवण व निम्बूरस मिला लें। पुनः थोड़े तेल में हींग के साथ छौंक कर सुगन्धित कर लें। इस प्रकार तैयार किया गया कच्ची मूली का यह व्यञ्जन अरुचि को दूर कर शीघ्र ही जठराग्नि को उद्दीप्त कर देता है।

६८. दही-अदरक का व्यञ्जन

राकाशशाङ्कधवलं दधि वीतनीरं
निक्षिप्तसैन्धव-दलीकृतशृङ्गवेरम्।
कर्पूरनीरसुरभिकृतमास्ययोगाद्
उद्दीपितो भवति जाठरजातवेदाः।।८०।।

पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा धवल पानी रहित दही लें। उसमें सैन्धव लवण तथा अदरक के टुकड़े डाल दें तथा उचित मात्रा में कपूरनीर (कपूरमिश्रित जल) मिलाकर उसे सुगन्धित कर लें। इस प्रकार तैयार किए गए दही के इस व्यञ्जन के सेवन से जठराग्नि विशेष रूप से उद्दीप्त हो जाती है। इसमें वृक्ष से उत्पन्न प्राकृतिक कपूर ही लें, बाजारू नहीं।

---

७९. (तुलनीय- क्षेम०- ६.५०)
८०. (तुलनीय- क्षेम०- १९.१३)

६९. कदलीफल-व्यञ्जन-१

निक्षिप्तं मथिते घृतेन सहितं जम्बालितं शर्करा-
धूलिभिर्मरिचोत्थितेन रजसा व्यालोडितं किञ्चन।
मल्ली-चम्पक-केतकी-सुरभितं मृत्पात्रमध्यस्थितं
जिह्वाया विदधाति पक्त्रिममिदं मोचाफलं चापलम्।।८१।।

बिना घी निकाले मथित दही में टुकड़े-टुकड़े कर पका केला डालें। इसमें उचित मात्रा में शर्करा व कालीमिर्च मिलाकर पुनः मन्थन करें। इसे मल्ली (मल्लिका/बेला), चम्पक (चम्पा) एवं केतकी (केवड़ा) से सुगन्धित कर मिट्टी के पात्र में रखें। इस प्रकार कदली-फल से बनाई गई यह स्वादिष्ठ रसाला जिह्वा को चञ्चल बना देती है अर्थात् अति स्वादु होने से अरुचि को दूर कर क्षुधा को जागृत कर देती है। पके केले के गुण इस प्रकार वर्णित हैं-

मोचं स्वादुरसं कषायमधुरं वीर्येण शीतं मृदु
पित्तघ्नं त्वनिलापहं गुरुतरं पथ्यं न मन्देऽनले।
सद्यः शुक्रविवर्धनं क्लमहरं तृष्णापहं शान्तिदं,
दीप्ताग्नेः सुखदं कफामयकरं सन्तर्पणं प्राणिनाम्।।

केला रस व विपाक में मधुर, मधुर-कषाय, शीतवीर्य, मृदु (कोमल), पित्तघ्न, वातहर व गुरुतर होता है। यह अग्निमान्द्य में पथ्य नहीं माना जाता है। केला शीघ्र शुक्रवृद्धिकर, क्लान्तिहर (थकान दूर करने वाला), तृष्णाशामक, शान्तिप्रद व सन्तर्पण (तृप्तिकारक) होता है। तीव्र जठराग्नि वाले के लिए केला सुखदायक होता है। यह अतिमधुर होने से अधिक मात्रा में खाने पर कफरोग-कारक होता है।

---

८१. (तुलनीय- क्षेम०- १२.४६)

७०. कदलीफल-व्यञ्जन-२

मधुरमथितमध्ये राजिकां संक्रमय्य
त्वगधनमथ मोचं पातयेत्तत्र पक्वम्।
करविलुलितमेतद्वासितं तच्चतुर्भिः
स्थितमपि नयनाग्रेऽरोचके जागरूकम्।।८२।।

खट्टेपन से रहित मीठी छाछ में राई मिलाए; तदनन्तर उसमें छिल्का रहित पका केला डाल दें, इसे अच्छी प्रकार मथकर चतुर्जातक (दालचीनी, इलायची, तेजपात व केसर) से सुगन्धित कर लें। इस प्रकार तैयार किया गया कदली-फल का यह पेय (व्यञ्जन) देखते ही रुचि जागृत कर देता है तथा इसके सेवन से जठराग्नि तीव्र हो जाती है।

चतुर्जातक- त्वगेलापत्रकेसरम् (सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थानम् -१०.२२) त्वक् (दालचीनी), एला (इलायची), पत्र (तेजपात) व केसर, ये चार द्रव्य आयुर्वेद में चतुर्जात या चतुर्जातक नाम से जाने जाते हैं। इन्हें ही प्रस्तुत पद्य में चतुर्भिः पद से निर्दिष्ट किया है।

७१. एर्वारु-व्यञ्जन-१

लवणकणविमिश्राः स्वादुदैर्वारुखण्डाः
कठिनकरविगाढा वस्त्रनिष्पीडिताश्च।
दधि-विलुलित-राजीचूर्ण-संस्कारवन्तो
भवति रुचिनिदानं राजिकासिद्धमेतत् ।।८३।।

---

८२. (तुलनीय- क्षेम०- १२.४८)

८३. भो., ब.१ पुस्तिकयोरत्र तृतीयचरणस्य द्विविधः पाठो लिखितोऽस्ति- दधिविलुलितराजिभ्रान्तिजा पंक्तिरेषा- (१), विधि-विदलित-राजीचूर्ण-संस्कारवन्तो (२), अनयोर्द्वितीयस्थानगत एव चरणः ब.२ पुस्तिकायां दृश्यते। इह तु औचित्यानुरोधाद् द्वयोरंशतो मेलनेन उपरिगतः पाठो विन्यस्तः।

सैन्धव लवण से मिश्रित एर्वारु-खण्डों (खरबूजे के टुकड़ों) को अच्छी प्रकार से मसलें व झीने स्वच्छ वस्त्र से निचोड़ लें या पतली चलनी से छान लें; तत्पश्चात् इस द्रव को दही में डालकर पिसी हुई राई मिला लें एवं अच्छी प्रकार से मथ लें। इस प्रकार एर्वारु-खण्डों से तैयार किया गया यह व्यञ्जन अति रुचिकारक होता है।

७२. एर्वारुक-व्यञ्जन-२

एर्वारुकं विदलितं लवणेन मिश्रं
नि:शेषिताम्बुकणमुज्झितशुभ्रखण्डम्।
चिञ्चारसेन मरिचेन तथैलया च
जुष्टं विबोधयति मारुतमित्रमेतत् ।।८४।।

एर्वारु (खरबूजे) को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर सैन्धव लवण मिला लें। पुनः इन्हें मसलें तथा छानकर इनका रस निकाल लें; तदनन्तर थोड़ी-सी खाँड, इमली का रस, कालीमिर्च तथा इलायची मिला लें। इस प्रकार तैयार किया गया एर्वारु का यह व्यञ्जन अरुचि का निवारण कर जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है।

७३. चणकपत्र-व्यञ्जन

क्षाराम्लबालफलिनश्चणकप्रवालाः
सम्मर्दिता मरिचसैन्धवशृङ्गवेरैः।
चूर्णीकृतैः रुचक-केसर-तैलदिग्धैः
रुच्यः सघोलचणकः कृतहिङ्गुवासः।।८५।।

क्षार (खार) व अम्लता से युक्त कच्चे चनों के कोंपल तोड़ लें। इन्हें कालीमिर्च, सैन्धव लवण व अदरक के साथ पीस लें। तदनन्तर इनमें रुचक (निम्बू) के केसर (अन्दर के रसदार रेशे) व तिल का तेल मिला लें तथा हींग के

८५. (तुलनीय- क्षेम० ८.१३५)

साथ छौंक कर सुगन्धित कर लें व घोल (छाछ) में मिला लें। इस प्रकार तैयार किया गया चणक-पत्रों का यह व्यञ्जन भोजन में अतीव रुचिवर्द्धक होता है।

७४. वालुकफल (ककड़ी) व्यञ्जन

रात्रौ निशाकरतुषारकणावकीर्णे
प्रान्ते निशामृदुलमारुतवीजिते च।
छिन्ने शिलाद्युतिभवं नवभाजि बीजे
हेमन्तवालुकफलेऽमृतमस्ति गूढम्।।८६।।

हेमन्त ऋतु में उत्पन्न वालुक फल (कर्कटी विशेष/ककड़ी का एक भेद) को रात में चन्द्रमा की किरणों व ओस में रख दें तथा प्रभात काल में शीतल मन्द पवन में रखे रहें। इस प्रकार रखे हुए इस फल में साक्षात् अमृत ही निवास करता है, अर्थात् यह अमृत तुल्य गुणकारक बन जाता है।

७५. कदलीगर्भदण्ड-व्यञ्जन

वृन्तच्छिन्नः सलिलविधृतः कृष्टतन्तुप्रतानः
कम्बुभ्राता जलविलसितोत्कृत्तजम्बीरजुष्टः।
मध्ये मध्ये तनुशकलितेनार्द्रकेणातिपूर्णः
स्वादुस्तूर्णं भवति नितरां गर्भदण्डः कदल्याः।।८७।।

केले के तने के अन्दर वाले कच्चे दण्ड को गोलाई में छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें। निम्बू के छोटे-छोटे टुकड़े छिल्का हटाकर इसमें मिला दें तथा बीच-बीच में अदरक के पतले-पतले टुकड़े भी मिला दें। इस प्रकार तैयार किया गया यह हरितक (सलाद) रूप वाला व्यञ्जन अतीव स्वादु होता है तथा शीघ्र ही अरुचि को दूर कर देता है।

---

८७. वृत्तश्छिन्नः- भो., वृत्तछिन्नः- ब.१, वृंतछिन्नः- ब.२, वृन्ताच्छिन्नः- क्षेम०- ८.१८३; कृष्टतन्तु०.. कंबुभ्राता- भो., ब.१, ब.२, कृत्ततन्तुः.. कम्बुभ्रान्त्या- क्षेम०- ८.१८३; (तुलनीय- क्षेम०- ८.१८३)

७६. वंशांकुर-व्यञ्जन

वंशाङ्कुराश्चन्द्रकरानुकारा विभाविता: सैन्धवनिम्बुकाभ्याम्।
विकीर्णखण्डीकृतशृङ्गवेरा जलेऽपि वह्निं लघु दीपयन्ति।।८८।।

चन्द्रमा की किरणों जैसे धवल बाँस के कच्चे व कोमल अंकुरों में सैन्धव लवण व निम्बू का रस मिला दें। इनमें अदरक के पतले-पतले टुकड़े भी मिला दें। इस प्रकार बाँस के अंकुरों से हरितक (सलाद) रूप में बना व्यञ्जन जठराग्नि को शीघ्र ही उद्दीप्त कर देता है।

क्षेमकुतूहल (११.२९) में 'वंशाङ्कुरा:' के स्थान पर 'बिसाङ्कुरा:' पाठ है। तदनुसार कच्चे कमलनाल द्वारा भी उक्त विधि से यह व्यञ्जन बनाया जाता है, ऐसा समझना चाहिए।

७७. आम्रमञ्जरी-व्यञ्जन

मुकुल: सहकारशाखिन: शतखण्डीकृत-सैन्धवार्दित:।
दधिलेश-मरीच-संस्तुतश्चिरजातामरुचिं छिनत्ति स:।।८९।।

आम की मञ्जरियों अर्थात् बौर को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर सैन्धव लवण के साथ पीस लें। इनमें थोड़ा-सा दही व कालीमिर्च का चूर्ण भी मिला लें। इस प्रकार तैयार किया गया आम्रमञ्जरियों का यह व्यञ्जन चिरकाल से उत्पन्न अरुचि को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

७८. पाचक जल

कुम्भोद्धृतं तरणिसारथिसूतिकाले
कह्लारसौरभकिरस्य सरोवरस्य।

---

८८. (तुलनीय- क्षेम०- ११.३०)

८९. 'मरीचि' इति-हस्तलिखित पुस्तिकासु दृश्यमान: पाठ: प्रमादकृत:। इह तु संशोध्य 'मरीच' इति पाठ: कृत:। (तुलनीय- क्षेम०- ११.२१)

आगालितं शिशिरितं कनकानुकास्थं
पेयं जलं भवति चन्दनचन्द्रवासम्।।९०।।

प्रात: सूर्योदय के समय कह्लार अर्थात् लाल पुष्पों वाले कमल की सुगन्ध से युक्त सरोवर का जल छानकर घड़े में भर लें तथा चन्दन व कपूर से सुगन्धित कर लें। सुवर्ण पात्र में भरकर रखा हुआ यह जल विशेष रूप से पाचनकारी व लाभदायक होता है तथा भोजन में रुचि बढ़ता है।

टिप्पणी- पुराने समय में प्रदूषण रहित स्वच्छ जल के सरोवर बहुसंख्या में होते थे। उनका जल स्वच्छ होने से पीने के काम में भी लिया जाता था; परन्तु आज-कल प्राय: सर्वत्र प्रदूषण बढ़ जाने से यह विधि नहीं अपनाई जा सकती है।

७९. पाचनकारी निम्बूजल

एकं पाकविशेषसौरभ-जरज्जम्बीरनीरं गुरु-
ग्रावग्रन्थिक-दर्पित-क्षितिधरस्रोतोजलांशं दश।
सप्तांशा च सिता विमिश्रमखिलं कर्पूरधूपार्पणा-
देतत् पानकमानको रुचिवधूपूर्वप्रदेशेऽग्रत:।।९१।।

पकने पर सुगन्धित हुए निम्बू का रस लें तथा पर्वत के पत्थरों से टकराकर बहते हुए नदीस्रोत से लिए गए दस गुने जल में उसे मिलाएं। निम्बूरस से सात गुना मात्रा में शर्करा मिलाकर कर्पूर की धूप से इसे सुगन्धित करें। इस प्रकार तैयार हुआ यह पानक रुचिवधू के सामने मानो साक्षात् आनक (नगाड़े) के रूप में प्रस्तुत होता है, अर्थात् विशेष रूप से रुचिजनक व अग्नि-दीपन होता है।

---

९१. ०नीरं गुरु- भो., ब.१, २; ०नीरांशकं- क्षेम०-१२.७१;
(तुलनीय- क्षेम०- १२.७१)

८०. धान्याम्ल (काञ्जी)

धान्याम्लमच्छतर-यामनु-वारिहारि
शुण्ठीरजो लवणजीरकसंस्तुतं यत्।
आवासितं सुरभिहिङ्गुकणेन यत्नात्
तेनाशुशुक्षणिकणोऽनणुतां प्रयाति।।९२।।

निर्मल यमुना-जल के समान कान्तिमान् स्वच्छ धान्याम्ल (धान्य से बनी काञ्जी) में शुण्ठी (सोंठ) का चूर्ण, सैन्धव लवण व जीरा मिलाएं। इसे भुनी हींग से सुगन्धित करें। इस प्रकार तैयार यह पेय दुर्बल जठराग्नि को भी प्रबल बना देता है

८१. आम्रपानक (आम का पना)

आपो निरस्थिसहकारफलस्य खण्डै-
र्मिश्रीकृता दिनयुगं वसनेन पूताः।
आलोलिता लवण-जीरक-शृङ्गवेरै-
रास्वादिताः सपदि कन्दलयन्ति वह्निम्।।९३।।

गुठली रहित आम के छोटे-छोटे टुकड़े कर उचित मात्रा में जल मिलाकर रख दें। दो दिन के अनन्तर इसे स्वच्छ पतले वस्त्र या चलनी से छान लें। इस जल में सैन्धव लवण, जीरा व अदरक डालकर अच्छी प्रकार से मिला लें। इस प्रकार तैयार किया गया यह पेय अरुचि को दूर कर शीघ्र ही जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है।

८२. करौंदा की काञ्जी

एला-महौषधि-विभावितमाणिमन्थ-
संसिद्धमामकरमर्द्दक-काञ्जिकं यत्।
मन्दं विवर्धयति जाठरवीतिहोत्रं
निर्वाणदीपमिव गन्धकचूर्णयोगः।।९४।।

९२. (तुलनीय- क्षेम०- १२.९०) ९४. (तुलनीय- क्षेम०- १२.९१)

इलायची तथा सोंठ से युक्त एवं माणिमन्थ (सैन्धव लवण) के साथ सिद्ध किए गए कच्चे करमर्दक (करौंदा) से काञ्जी तैयार करें। यह मन्द जठराग्नि को उसी प्रकार प्रज्वलित कर देती है, जैसे बुझते हुए दीपक को गन्धकचूर्ण का योग। भाव यह है कि इसके पान से जठराग्नि शीघ्र ही उद्दीप्त हो जाती है, जिस प्रकार कि बुझते हुए दीपक पर गन्धक का चूर्ण डालने से वह तुरन्त प्रचण्ड हो जाता है।

८३. तक्रकाञ्जी

यः काञ्जिकं पिबति सेवित-राजिकांशं
संश्रान्त-लावणक-मिश्रितकालशेयम्।
तस्याग्निरोदनघृतैर्न शमं प्रयाति
प्रस्फूर्त्त औंर्व इव वारिधिवारिपूरैः।।९५।।

जो व्यक्ति राई, सैन्धव लवण और छाछ से मिश्रित काञ्जी का पान करता है, उसकी जठराग्नि घृतसिक्त (घी में सने भात) से भी तृप्त नहीं होती है। जैसे कि औंर्वाग्नि (वाडवाग्नि/समुद्र में विद्यमान अग्नि) समुद्र की जलराशि से तृप्त नहीं होती है। यहाँ प्रस्तुत उपमा का भाव इतना ही है कि यह काञ्जी बहुत तीव्र भूख लगाती है।

८४. रसाला (शिखरन)

मथितमनुगतं विशुद्धिमद्भिर्मधुघृतमर्दित-शर्करापरागैः।
समरिचमगरुप्रकारधूपं तदिह विराजति निर्मला रसाला।।९६।।

तक्र (छाछ) में स्वच्छ मधु, घृत एवं शर्करा (बूरा) डालकर मिलाएं; इसके साथ ही समुचित मात्रा में कालीमिर्च भी मिलाएं। इसे अगरु की धूप

९५. प्रस्फूर्त्त रोध इव वारिधिवारिपूरः-भो., प्रस्फूर्तिरौर्व इव वारिधिवारिपूरैः- ब.। प्रस्फूर्त्त औंर्व इव वारिधिवारिपूरैः इत्येवं प्रकारेण तु सम्पादकेनार्थानुरोधादौंच-त्याच्च शोधितः पाठः। क्षेमकुतूहले (१२.९२) प्रास्फारितौर्व इव इति।

देकर सुगन्धित करें। इस प्रकार निर्मल रसाला अर्थात् शिखरन तैयार हो जाती है। यह बहुत ही स्वादिष्ठ व जठराग्नि-दीपन होती है।

८५. पाचनकारी तक्र-१

मथित-सैन्धव-जीरक-दलितार्द्रक-सङ्गतं कियन्मथितम् ।
एलारजसा वासितमशितुर्जठराग्निमुन्नतिं नयति ।।९७।।

सैन्धव लवण, जीरा व अदरक के टुकड़ों को लेकर अच्छी तरह पीसकर छाछ में मिला लें; तदनन्तर इसे इलायची के चूर्ण से सुगन्धित कर लें। इस प्रकार तैयार किया गया यह तक्र का पेय सेवन करने वाले की जठराग्नि को विशेष रूप से बढ़ा देता है।

८६. पाचनकारी तक्र-२

गतचरवासरतक्रं वस्त्रेणागालितं ससैन्धवक्षोदम्।
रुचिकरधूपनधूमैर्धूपितमचिरेण रोचनं भवति।।९८।।

पूर्व दिन की बासी छाछ को सैन्धव लवण मिलाकर स्वच्छ वस्त्र या चलनी से छान लें। इसे हींग आदि की रुचिकर द्रव्यों से धूपित कर सुगन्धित कर लें। इस प्रकार तैयार यह तक्र (छाछ) विशेष रूप से रुचिजनक होता है।

८७. पाचनकारी तक्र-३

एला-शुण्ठी-प्रवरलवणैः पक्वजम्बीरतोयैः
सार्द्धं ह्यस्तं दधि निमथितं नीतसारं क्रमेण।
भूयो भूयो रयिविमथितं तूर्यभागाम्बुवृद्धं
कूरद्वेषं हरति रुचिरं तक्रमेतन्निपीतम्।।९९।।

---

९८. गतवर- भो.,ब.१,२; गतचिर- क्षेम०-१२.८९; गतचर इति शोधितपाठः चरट्-प्रत्ययान्तः; (तुलनीय- क्षेम०- १२.८९)

९९. 'रविविमथितम्' इति हस्तलिखित-पुस्तिकासु दृश्यते। 'रयिविमथितम्' इति शोधितः पाठः। रयीति मन्थनदण्डस्य कृते लोके प्रसिद्धः शब्दः। रयः वेगोऽस्यास्तीति रयी।

इलायची, सौंठ, उत्तम कोटि का सैन्धव लवण तथा पके हुए निम्बू का रस उचित मात्रा में लें। इनके साथ अपेक्षित मात्रा में दही में डालकर मथें। तदनन्तर चतुर्थांश जल मिलाकर पुनः रयी से मथें। इस प्रकार तैयार किया गया यह रुचिकर तक्र (छाछ) पान करने पर कूरद्वेष (भक्तद्वेष) अर्थात् भोजन की अरुचि को दूर कर देता है।

कूरद्वेष- कूर शब्द अन्न का वाचक है। अन्न के प्रति द्वेष अर्थात् अरुचि होना कूरद्वेष कहलाता है। इसे भक्तद्वेष भी कहते हैं। संस्कृत में भक्त शब्द का अर्थ भात है तथा यह भोजन का उपलक्षण है। इस प्रकार भोजन में होने वाली अरुचि को आयुर्वेद में कूरद्वेष या भक्तद्वेष कहते हैं। कहा भी है-

भक्तद्वेषभक्ताच्छन्दौ चरकसुश्रुताभ्याम् अरोचकत्वेनैव संगृहीतौ। वृद्धभोजस्तेषां लक्षणानि पृथगाह-

प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नरः।
अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु।।
चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम्।
द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते।।
कुपितस्य भयार्तस्य अभिचारहतस्य च।
यत्र नान्ने भवेच्छ्रद्धा स भक्ताच्छन्द उच्यते।।

(भावप्रकाश, मध्यम खण्ड, अरोचकाधिकार ५-७)

चरक एवं सुश्रुत ने 'भक्तद्वेष' तथा 'भक्ताच्छन्द' नामक रोगों को 'अरोचक' के अन्तर्गत ही माना है; परन्तु वृद्धभोज ने इनके लक्षण पृथक् पृथक् कहे हैं- जिसमें मुख में डाला हुआ अन्न का ग्रास स्वादयुक्त नहीं लगता, वह अरोचक होता है। जिसमें अन्न का स्मरण करने, अन्न को देखने तथा छूने मात्र से मन में उसके प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है; वह भक्तद्वेष कहलाता है। जिसमें क्रोध, भय अथवा अभिचार के कारण भोजन में इच्छा नहीं रहती; उसे भक्ताच्छन्द कहते हैं।

८८. पाचनकारी तक्र-४

विपाचितक्षीरभवेन दध्ना संसाधितं स्वीकृतशृङ्गवेरम्।
मृत्पात्रनेयं शशिगन्धधेयं तत्कालशेयं नरदेवपेयम्।।१००।।

अच्छी प्रकार से उबाले हुए दूध से दही जमाएं। ऐसे दही से बनी छाछ में अपेक्षानुसार अदरक डाल दें; तत्पश्चात् इसमें थोड़ा-सा कपूर मिलाकर सुगन्धित करें तथा मिट्टी के पात्र में रखें। इस प्रकार तैयार किया गया यह दिव्य तक्र (छाछ) राजाओं के पीने योग्य होता है।

८९. पाचनकारी तक्र-५

पाकाक्रान्तनिदानशोणमधुरं स्निग्धोल्लसत्सौरभं
सद्यः सैन्धव-शृङ्गवेर-शकलैर्जिह्वाप्रमोदप्रदम्।
कर्पूरेण गुणाधिकेन दधि यत् पात्रान्तरे धूपितं
पीयूषं विजहाति जातु लभते शक्रोऽपि तक्रं यदि ।।१०१।।

अच्छी प्रकार पकाकर लाल हुए दूध से जमाया गया मधुर दही लें; इसमें सैन्धव लवण व अदरक के टुकड़े मिला दें तथा कर्पूर से सुगन्धित कर ले; तदनन्तर दूसरे पात्र में हींग आदि से इसे धूपित करें। इस प्रकार से तैयार किए गए सुगन्धित तक्र (छाछ) को यदि शक्र (इन्द्र) भी पा जाए तो उसकी अमृत पीने की रुचि मन्द पड़ जाती है, अर्थात् यह तक्र अमृत से भी अधिक स्वादिष्ठ होता है तथा अरुचि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है।

---

१००. 'विपाचितक्षीरभवेन' इति शोधितपाठः। एतस्य स्थाने 'विपाचितं क्षीरसमेन' इति पाठो हस्तलिखित-पुस्तिकासु दृश्यते।

१०१. (तुलनीय- क्षेम०- २.७) १०२. (तुलनीय- क्षेम०- ६.५५) ०रवच्च- भो.,ब.१; ०रबद्धं-ब.२; ०शारदतोयैः- भो.ब.२, ०तारदतोयैः-ब.१; ०निम्बुकवारा-ब.२, ०निम्बुपयोभिः-ब.१;

९०. अदरक का व्यञ्जन-१

मृत्त्वचारहितमङ्कुरवच्च क्षालितं विमलशारदतोयैः।
भावितं लवणनिम्बुपयोभिर्बालमार्द्रकमुमापतियोग्यम्।।१०२।।

अंकुरयुक्त कच्चे अदरक को अच्छी प्रकार धोकर मिट्टी हटा दें व उसका छिल्का भी उतार दें। इसमें सैन्धव लवण व निम्बूरस मिलाकर पीस लें। इस प्रकार तैयार किया गया यह स्वादिष्ठ अदरक भगवान् शंकर के उपयोग योग्य होता है अर्थात् इसे भाग्यशाली व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं। अदरक से बनाया गया यह व्यञ्जन विशेष रूप से अरुचिनाशक व जठराग्नि-दीपन होता है।

९१. अदरक का व्यजन-२

तैलासुरी-रजनी-सिन्धुज-कल्कसङ्गि
प्रस्यन्दमान-नवनिम्बुरसानुषङ्गम्।
स्वादूत्तरं शिशिरवासरभोजनेषु
कस्येतिवर्णनपथं खलु शृङ्गवेरम्।।१०३।।

स्वच्छ व ताजा अदरक लेकर उसमें तैल, राई, हल्दी व सैन्धव लवण मिलाकर पीस लें। तदनन्तर इसमें उचित मात्रा में निम्बू का रस निचोड़ लें। यह अतीव स्वादिष्ठ अवलेह बन जाता है। शीतकाल के दिनों में भोजन के साथ इसका सेवन करना चाहिए। इस प्रकार तैयार किए गए अदरक के इस अवलेह (चटनी) के स्वाद का वर्णन कौन कर सकता है।

९२. आमलकी-व्यञ्जन

स्विन्नं धात्रीफलं यज्ज्वलदनलशिखासन्निभं स्निग्धपात्रे
क्षिप्तं प्रभृष्टवाष्पीकण-रजनिरजस्तैल-सिन्धूत्थदिग्धम्।

१०३. (तुलनीय- क्षेम० - ६.१७)

आकृष्टं जातपाकं कतिपयदिवसैरुल्लसत्सौरभाढ्यं
तस्य स्वादानुवादे पतिरपि न गिरामीश्वरः कस्तदन्यः।।१०४।।

प्रज्ज्वलित अग्निशिखा के समान लाल वर्ण वाले पके आंवले लें। उन्हें तैल से युक्त स्निग्ध पात्र में पकाएं। पकाते समय इनमें उचित मात्रा में वाष्पीकण, हल्दी व सैन्धव लवण मिलाएं। पकने पर उतार लें तथा कुछ दिन तक रख दें। ऐसा करने से उनमें सुगन्ध बढ़ जाती है। इस प्रकार आँवले का यह अति स्वादु व्यञ्जन तैयार हो जाता है। इस स्वादिष्ठ आमलकी-व्यञ्जन की स्वादुता का वर्णन करने में वागीश्वर (बृहस्पति) भी समर्थ नहीं हैं, अन्य की तो बात ही क्या?

९३. बिम्बीबिल्व-व्यञ्जन

उदारबिम्बीफललम्बि बालं बिल्वं नखच्छेद्यमजातबीजम्।
आनीय कृत्तं लवणाम्बुमध्ये निवेशितं तद्धुजिरोचकाय।।१०५।।

अच्छी प्रकार से परिपुष्ट बिम्बीफल (कुन्दरू) लें तथा जिसमें अभी तक बीज न पड़े हों, ऐसा कच्चा कोमल बिल्वफल लें। इन्हें काटकर सैन्धव लवण मिश्रित जल में डाल दें। इस प्रकार तैयार यह व्यञ्जन भोजन में विशेष रूप से रुचि पैदा करता है।

९४. कुटजशिम्बी-व्यञ्जन

प्रथमकुटज-शिम्बी पूर्वमम्लावलोड्या
लवणसलिलमध्ये वासिता सप्तरात्रम्।
परिणति-समकालं पीतिमानं दधाना
भवति सुकृतभाजां भोजने सातिरुच्या।।१०६।।

ताजा कुटज की शिम्बी (फली) को पहले निम्बू आदि के अम्ल रस में आलोडित करें, अर्थात् मल लें; तदनन्तर सात दिन तक सैन्धव लवणयुक्त

---

१०४. (तुलनीय- क्षेम०- ११.२७)

जल में रख दें। ऐसा करने पर पीतवर्ण होकर बहुत स्वादिष्ठ बनी वह शिम्बी पुण्यशाली लोगों के ही भोजन में सुलभ होती है तथा विशेष रूप से रुचिवर्द्धक होती है।

९५. निम्बू

मधुरं च कषायं च हित्वा रसचतुष्टयम्।
मय्यस्तीति चतु:कालं निम्बूकं किमु शंसति।।१०७।।

मधुर व कषाय, केवल इन दो रसों को छोड़कर शेष चारों रस मेरे में विद्यमान हैं। इस प्रकार घोषणा करता हुआ निम्बू क्या कहना चाहता है, अर्थात् उसका यही कहना है कि- निम्बू का सेवन करने वाला कभी अरुचि या मन्दाग्नि का शिकार नहीं होता है।

९६. श्योनाक-व्यञ्जन

मरकत-रुचिराभा बालशोणाकशम्बा
निशिततरकृपाणी-त्र्यङ्गुलव्यक्तखण्डा।
तिलभवरस-राजी-सिन्धुजोषानुविद्धा
जनयति रुचिमुच्चैर्भोजने भाग्यभाजाम्।।१०८।।

कच्चे शोणाक (श्योनाक/सोनापाठा) की मरकत मणि के समान हरित आभा वाली, तीक्ष्ण कृपाण के आकार वाली शिम्बी (फली) को तीक्ष्ण चाकू से तीन-तीन अंगुल के परिमाण में काटकर तिल के तेल, राई, सैन्धव लवण व कालीमिर्च के साथ मिलाकर पकाएं। इस प्रकार तैयार किया गया यह व्यञ्जन भाग्यशाली लोगों को ही सुलभ होता है तथा भोजन में विशेष रूप से रुचिजनक होता है।

---

१०७. 'मय्यस्तीत्युक्तजलरां' - ब.२; 'मय्यस्तीति चतु:कालं' - भो., ब.१;

९७. वंशाकुर-व्यञ्जन

द्विपबलपतिदन्तप्रान्तशोभानुकारं
तिल-जलधिजरात्रीराजिकान्तःप्रचारम्।
कवलयति नितान्तं राजवंशाङ्कुरं सः
प्रमथपरिवृढेन प्रेषितो यः कटाक्षैः।।१०९।।

हस्तियूथ (हाथियों के झुंड) के पति गजराज के धवल दन्तप्रान्त (दाँतों के छोर) के समान उज्ज्वल अर्थात् श्वेत रंग वाले राजवंश (उत्तम कोटि के बाँस) के अंकुरों को तिल के तेल में डालकर हल्दी व राई मिला दें। इस प्रकार तैयार किए गए अति स्वादिष्ठ व्यञ्जन के सेवन का सौभाग्य उन्हें ही प्राप्त होता है, जो भगवान् शंकर के कृपाकटाक्ष के पात्र होते हैं।

९८. आम्र-व्यञ्जन

आमाम्राणि प्रवालैः सह रजनि-तिल स्नेह-सिन्धूत्थभाञ्जि
स्निग्धे तैलस्य पात्रे दश दिनमुषितान्यासुरीसौरभाणि।
मध्ये दध्योदनस्य प्रशमितदहनस्यापि रुच्यानि जन्तोः
सेवन्ते तेऽत्र येषाममृतकरकलाशेखरः सानुकम्पः ।।११०।।

कुछ कच्चे आम लें तथा साथ में ही आम के किसलय (कच्ची कोंपल) भी लें। इन्हें हल्दी, तिल का तेल, सैन्धव लवण व राई मिलाकर तेल से चिकने पात्र में दस दिन तक रखें। दस दिन के उपरान्त राई की सुगन्ध से युक्त होने पर इन्हें दध्योदन (दही भात) के साथ खाना चाहिए। इस प्रकार तैयार किया गया यह आम का व्यञ्जन अतीव रुचिवर्धक होता है। ऐसे स्वादिष्ठ व्यञ्जन भगवान् शंकर की कृपा से ही सुलभ हो पाते हैं।

---

१०९. तिलजलधिजरत्रीराजिकान्तःप्रचारम्- ब.१,२, भो.।अयं पाठः नातिस्फुटः।
११०. ०भांजि- भो., भाजि- ब.२; १११. (तुलनीय- क्षेम०- ११.२५)

९९. शिग्रुमूल-व्यञ्जन

धौतं कुञ्जरदन्तकर्त्तनसमं सिन्धूत्थ-तैलासुरी-
रात्रिसंक्रमितोत्तरोत्तररसं मूलं नवं शिग्रुजम्।
तस्याहो वदनान्तरे निविशते श्रीचन्द्रचूडप्रिया-
पादाम्भोरुहरेणुरञ्जितशिरा यः प्राच्यकाले पुमान्।।१११।।

धोने पर हाथी दाँत के समान शुभ्र (धवल) दिखाई देने वाली शिग्रु (सहिजन) वृक्ष की ताजी जड़ लें। इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें तथा सैन्धव लवण, तेल, हल्दी व राई डालकर पका लें। इस प्रकार शिग्रुमूल का यह अत्यन्त स्वादिष्ठ व्यञ्जन तैयार हो जाता है। भगवती पार्वती की कृपा से ही इस प्रकार के स्वादिष्ठ व्यञ्जन के सेवन का सौभाग्य मिलता है।

१००. सूरणकन्द-व्यञ्जन

मसृण-लवण-दोषा-राजिका-तैल-सङ्ग-
प्रशमित-वदनार्त्ति-प्रौढकण्डूलभावः।
मथित-मथितकूरप्रीतिभाजां नृपाणां
भवति सपदि रुच्यः सूरणः पूरणाय।।११२।।

सैन्धव लवण, हल्दी एवं राई उचित मात्रा में डालकर इनके साथ सूरण कन्द को तेल में पका लें। ऐसा करने से उसका मुख में पीड़ा व खुजली उत्पन्न करने वाला दुष्प्रभाव समाप्त हो जाता है। इस प्रकार तैयार किया गया सूरण कन्द का व्यञ्जन तक्रमिश्रित (छाछ मिले) ओदन (भात) के साथ खाने से अत्यन्त रुचिवर्धक होता है।

१०१. बृहतीफल-व्यञ्जन

चतुःखण्डं वृन्तावधि लघुबृहत्याः फलमपि
क्षपाधूली-तैलासुरि-लवण-निम्बूद्रवयुतम्।
त्र्यहादूर्ध्वं सिद्धं भवति दधिभक्ते सुरुचिदं
न दन्ताग्रग्रस्तं जनयति रुजः कण्टकभवाः।।११३।।

वृन्त पर्यन्त (डण्ठल को साथ में लेते हुए) लघु बृहती फल (छोटी कण्टका-री) को चार टुकडों में काट लें। इसमें हल्दी का चूर्ण, तेल, राई, सैन्धव लवण व निम्बू का रस डालकर तीन दिन तक रख छोड़ें। ऐसा करने से सेवन योग्य स्वादिष्ठ व्यञ्जन तैयार हो जाता है। दही-भात के साथ खाने से यह अत्यन्त रुचिकारक होता है। इसे खाते समय पहले दन्ताग्र (दाँतों के अग्र भाग) से चबाना चाहिए। इससे कण्टकारी के काटों से होने वाली पीड़ा से बचाव रहता है।

१०२. राजशेलुफल (बड़े लिसोड़े) का व्यञ्जन

रजनि-लवण-तैल-क्षुद्रसिद्धार्थपङ्क-
स्थितिवशकनकश्रीहारिषु स्वादवत्सु।
भवति मतिरुदश्विद्भोजने पुण्यभाजां
धृतबलिषु विपाके राजशेल्वाः फलेषु।।११४।।

हल्दी, सैन्धव लवण, तेल, क्षुद्रसिद्धार्थ (राई), इन सब को उचित मात्रा में पानी के साथ पीस कर लुगदी बना लें तथा इस में राजशेलुफल (बड़े लिसोड़े) को छोटे-छोटे टुकडों में काटकर पीस लें। इन्हें तक्र (छाछ) के साथ सेवन करने पर भोजन में विशेष रूप से रुचि बढ़ती है।

१०३. हरी मिर्च का व्यञ्जन

तैलसैन्धव-जम्बीर-रसमध्ये परिप्लुता।
कियद्भिरेव दिवसैः रुच्या मरिचमञ्जरी।। ११५।।

तेल, सैन्धव लवण व निम्बू के रस में हरी मिर्च को डालकर कुछ दिन तक रख दें। इस प्रकार यह स्वादिष्ठ व्यञ्जन के रूप में तैयार जो जाती है तथा बहुत ही रुचिवर्धक होती है।

१०४. आम्रमञ्जरी-व्यञ्जन

नवसैन्धव-तैल-राजिका-रजनी-कल्ककृताधिवासिनः।
रुचिमत्त्वमुपैति भोजने सहकाराङ्कुरकोत्करस्तदा।।११६।।

सैन्धव लवण, तेल, राई व हल्दी को पीसकर कल्क बना लें। इसी कल्क में आम की मञ्जरियों को भी पीस लें। इस प्रकार तैयार किया गया यह व्यञ्जन विशेष रूप से भोजन में रुचि को बढ़ाता है।

१०५. निम्बू-व्यञ्जन

पीतानि भूरिरसवन्ति महोदराणि
जम्बीरपल्लव-विमर्दित-सौरभाणि।
सिन्धूत्थ-तैल-परिपूरित-गह्वराणि
निम्बूफलानि जठरानलदीपनानि।।११७।।

पककर पीले हुए निम्बू के फल लें। उन्हें काटकर सैन्धव लवण व तेल से भर दें तथा पीसे हुए निम्बू के पत्तों के साथ मिलाकर सुगन्धित कर लें। इस प्रकार तैयार किए निम्बू फल अरुचि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त कर देते हैं।

१०६. कोल फल (बेर) का व्यञ्जन

विदार्य वृन्तं लवणेन पूरितं
पुनः पुनर्घर्मकरस्य गोचरे।
पतङ्गपाकेन चिरेण पाचितं
कौलं फलं दीपकमाशुशुक्षणेः।।११८।।

कोल फल (बेर के फल) को वृन्त के स्थान से फाड़कर उसमें समुचित मात्रा में लवण भर दें, फिर धूप में रख दें। कुछ काल के उपरान्त धूप के प्रभाव से पके ये बेर के फल विशेष रूप से अरुचि-नाशक व अग्नि-दीपन होते हैं। आशुशुक्षणि शब्द अग्नि का वाचक है। वेदमन्त्रों में उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रचुर प्रयोग मिलता है।

१०७. करमर्दक-व्यञ्जन

करमर्दकमाविलीकृतं रजनी-निर्मलतैल-सैन्धवैः।
अचिरेण करोति रोचनं यदि युक्त्या मथितेन युज्यते।।११९।।

हल्दी, सैन्धव लवण व तेल डालकर करमर्दक (करौंदा) के फल को पीस लें तथा इस में छाछ मिला लें। इस प्रकार तैयार किया गया करौंदे का यह व्यञ्जन बहुत ही रुचिजनक होता है।

१०८. आम्रातक-व्यञ्जन

आम्रातकं लवण-तैल-निशापरीतं
स्तोकासुरी-सुरभितं पिहितं प्रयत्नात्।
उद्घाटितं खलु गते सति मासमात्रे
सौरभ्यतो रसन-संवननं परं तत्।।१२०।।

आम्रातक (आमड़ा) को तेल में डालकर सैन्धव लवण व हल्दी मिला दें तथा थोड़ी राई डालकर पात्र का मुँह बन्द करके रख दें। एक मास के उपरान्त उसका मुख (ढक्कन) खोलकर प्रयोग करें। इस प्रकार विशेष सुगन्धयुक्त होकर तैयार हुआ यह व्यञ्जन जिह्वा को वशीभूत कर लेता है, अर्थात् विशेष रूप से रुचिजनक होता है।

१०९. मुनितरुफल-व्यञ्जन

यत्नेन कुण्डलितमाकुलितं नितान्तं
सिन्धूत्थ-दन्तशठ-तैल-निशारजोभिः।
अन्तर्निवेशित-दलीकृत-शृङ्गवेरं
वाचंयमद्रुमफलं रुचिमातनोति।।१२१।।

मुनिद्रुम (मुनिवृक्ष/अगस्त्यवृक्ष) के फल को यत्नपूर्वक कूटकर गोल बना लें तथा उसमें सैन्धव लवण, निम्बू, हल्दी व तेल मिलाएं तथा अदरक के छोटे-छोटे टुकड़े भी डाल दें। इस प्रकार तैयार किया गया यह व्यञ्जन विशेष रूप से रुचिवर्धक होता है।

वाचंयम शब्द का अर्थ है- वाणी का नियमन रहने वाला, मौन रहने वाला मुनि। अगस्त्यवृक्ष के लिए मुनिवृक्ष शब्द प्रयुक्त होता है। यहाँ मुनि का पर्यायवाची वाचंयम पद लेकर मुनिवृक्ष के स्थान पर वाचंयमद्रुम शब्द प्रयुक्त किया है।

११०. आम्रमञ्जरी-व्यञ्जन

नव-सैन्धव-दन्तशठैरवशी-
कृततैलनिशारजसा कपिशा।
सहकारतरोः कुसमस्तबकाः
रुचिमातनुते भुजिमाचरताम्।।१२२।।

आम्र वृक्ष की मञ्जरियों अर्थात् बौर के स्वच्छ किए गुच्छों में सैन्धव लवण, निम्बू, हल्दी व तेल उचित मात्रा में मिलाएं। इस प्रकार कपिशवर्ण= थोड़े लाल व काले रंग वाले आम के कुसुम-स्तबकों (आम्रमञ्जरियों) से तैयार किया गया यह व्यञ्जन विशेष रुचिजनक होता है।

१११. आम्रफल-व्यञ्जन

तिलतैल-निशासुरीरजो-लवणैरञ्जितमन्तरान्तरा।
विनिहन्तितरामरोचकं सहकारस्य फलं पचेलिमम्।।१२३।।

आम का पका हुआ फल लें। उसे धोकर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें तथा उसमें हल्दी, राई व सैन्धव लवण एवं तिल का तेल उचित मात्रा में मिला लें। इस प्रकार तैयार किया आम्र फल का यह व्यञ्जन अरुचि को नष्ट कर देता है।

११२. आम्र-पानक (आम का पना)-१

वरसैन्धव-राजिकारजः-सलिलैः कर्दमितं घटोदरे।
अदतां हि धिनोति मानसं फलमामं सहकारभूरुहः।।१२४।।

आम का कच्चा फल लें, मिट्टी के पात्र में उचित मात्रा में पानी डालकर उसमें इस फल को मसलकर मिला लें। ऊपर से सैन्धव लवण एवं राई का चूर्ण डाल दें। इस प्रकार तैयार किया गया यह पेय भोजन में रुचि उत्पन्न करता है तथा भूख को जागृत करता है।

११३. आम्र-पानक (आम का पना-२)

जलसैन्धवमात्रसाधितं लघु माकन्दफलं मनोहरम्।
अतिरोचकमश्नतो भवेत् सहकार्यन्तरसारसौरभम्।।१२५।।

आम के छोटे (बिना पके) फल को सैन्धव लवण डालकर पानी में पका लें। इस प्रकार तैयार पेय भोजन में अत्यन्त रुचि पैदा करने वाला होता है।

नानाविध शाकव्यञ्जनों के स्वाद का रहस्य

संख्यातीता: कति कति न ते शाकपाकप्रभेदा:
किन्तैरुक्तैरहितविरसै रत्नगर्भापतीनाम्।
मूलं पत्रं कुसुममथवा पल्लवं वा फलं वा
युक्त्या राद्धं भवति चतुरै: सर्वमेवातिरुच्यम्।।१२६।।

प्राचीन पाकशास्त्रों में शाकपाक के अगणित प्रकार बताए हैं, राजाओं के सामने उन सभी की विस्तृत चर्चा करने से क्या लाभ? वस्तुत: तथ्यपूर्ण बात यह है कि मूल, पत्र, फूल, पल्लव (कच्ची कोंपल) व फल, इन सभी को युक्तिपूर्वक समुचित उपस्कर (मसाले) के साथ पकाने पर ये सभी अत्यन्त स्वादिष्ठ व रुचिकर बन जाते हैं।

पाचनकारी विशिष्ट जल

काले धाराधराणां निवसनविधृतव्योमवारिप्रपूर्णान्
कुम्भानम्भोजखण्डद्युतिमति सरसि प्रक्षिपेन्मुद्रितास्यान्।
तेषामाकृष्टमम्भ: प्रतिदिनममलं न्यस्तकर्पूरसारं
भोज्यान्ते पीतमात्रं जरयति सकलाहारमायु: करोति।।१२७।।

वृष्टिकाल में वर्षा होते समय स्वच्छ वस्त्र को तानकर उसके बीच में पत्थर रखकर नीचे गिरने वाले पानी से घड़े भर लें, अथवा किसी अन्य स्वच्छ छत से

---

१२६. (तुलनीय- क्षेम०- ८.१०३) १२७. (तुलनीय- क्षेम०-१२.११०)

गिरने वाले वृष्टिजल का घड़ों में संग्रह कर लें। इन घड़ों को सील बंद करके किसी विकसित कमलों वाले सरोवर में डाल दें। तदनन्तर आवश्यकतानुसार इनके निर्मल जल में उचित मात्रा में स्वच्छ कपूर मिलाकर भोजन के बाद सेवन करें। इस जल के सेवन से भोजन शीघ्र ही पच जाता है तथा मनुष्य दीर्घायु होता है।

कपूर आमाशयगत रक्त का संचरण बढ़ाने वाला होने से दीपन-पाचन होता है। अत एव यहाँ कर्पूर-मिश्रित वृष्टिजल को विशेष रूप से भोजन को पचाने वाला कहा है। ध्यान रहे बाजार में मिलने वाले कृत्रिम (सिन्थेटिक) कपूर का प्रयोग व्यञ्जन या पेयों में कदापि न करें। क्योंकि यह सेवन योग्य नहीं होता है। व्यञ्जनों में कपूर के वृक्ष से मिलने वाला प्राकृतिक कपूर ही आयुर्वेद व पाकशास्त्र में विहित है।

सुगन्धिद्रव्य-मर्दन

कृष्णागरु-प्रतनु-कल्ककषायमन्तः-
कर्पूरसाररजसा च सनाथमुच्चैः।
आराधित-त्रिपुरवैरि-पदाम्बुजानां
भोज्यावसान-करमर्द्दनचन्दनं स्यात्॥१२८॥

आयुर्वेदीय व पाकशास्त्रीय परम्परा में भोजन के उपरान्त चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों को हाथों पर मलकर मुख पर मलने का विधान है। इससे व्यक्ति प्रफुल्लित व प्रसन्न रहता है तथा भोजन-पाचन के अनुकूल स्थिति बनती है। प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार उक्त परम्परा के अनुसार सुगन्धितद्रव्य-मर्दन का वर्णन कर रहे हैं-

कृष्णागरु (काले अगर) के महीन पीसे हुए कल्क (लुगदी) एवं कषाय में कपूर व चन्दन मिलाकर हाथों पर मलने का सौभाग्य उन्हें ही सुलभ होता है, जिन्होंने त्रिपुरारि भगवान् शंकर की आराधना की हो।

---

१२८. (तुलनीय-क्षेम० १२.१३३)

धूमवर्त्ति-सेवन

अगरु-मलयभूभृद्दारु-कर्पूरसार-
प्रथितमृगमदांशैः साधितां धूमवर्त्तिम्।
अनुभवति स नित्यं भोजनान्ते दुरापां
क्षितिधरपतिकन्या यस्य वश्या नरस्य।।१२९।।

आयुर्वेदीय व पाकशास्त्रीय ग्रन्थों में भोजन के उपरान्त बढ़ने वाले कफ के शमन के लिए धूमपान का विधान भी मिलता है। इसके लिए औषधीय द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत पद्य में ग्रन्थकार इसी विषय का निर्देश करते हुए कहते हैं-

अगरु, चन्दन, कर्पूर व कस्तूरी द्वारा तैयार की गई उत्तम धूमवर्त्ति का भोजन के उपरान्त उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार की दिव्य धूमवर्त्ति उसे ही सुलभ हो सकती है, जिसने भक्तिपर्वूक भगवती पार्वती को प्रसन्न कर लिया हो। धूमवर्त्ति-निर्माणविधि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में देखें।

ताम्बूल-वर्णन

कदलीकुट-कोटर-विगलित-सौरभ्यभाजनं तारम्।
निःस्नेहं मुनिमानसमिव कर्पूरं तदादेयम्।।१३०।।

आयुर्वेद में भोजन के उपरान्त मुख-शोधन व भोजन के पाचन के लिए ताम्बूल-चर्वण (पान खाने) का विधान मिलता है। अतः इस प्रसंग में ग्रन्थकार द्वारा यहां ताम्बूल के घटक द्रव्यों का वर्णन किया जा रहा है-

कर्पूर- ताम्बूल (पान) में कर्पूर (कपूर) एक मुख्य घटक होता है। इसके विषय में प्रस्तुत श्लोक में कहा है- कि कदली-कुट के समान कर्पूर वृक्ष में बने कोटर में विगलित (स्रवित) होकर एकत्र हुए सुगन्धयुक्त ऐसे तार (चमकदार) कर्पूर को ग्रहण करना चाहिए, जो उसी प्रकार निःस्नेह होता है, जैसे मुनियों का मन। भाव यह है कि मुनियों का मन जिस प्रकार

स्नेह (राग) से रहित होता है, उसी प्रकार स्नेह रहित (बिना चिकनाई का/ विषाक्ता दोष रहित) कर्पूर पान के लिए ग्राह्य होता है।

आवर्त्तप्रभलोहितोदरपटी पीयूषधाराधरा-
जिह्वामूल-कपोल-तालुमृदुला स्वाङ्गोल्लसत्सौरभा।
तस्येयं मधुरा प्रयाति वदनं पौगीफलीफालिका
यो जायेत महेश्वरांघ्रिकमले भृङ्गायमाणो नरः।।१३१।।

सुपारी- काटने पर अन्दर से लालिमायुक्त गोल परतों वाली, अमृत की धारा को धारण करने वाली तथा चबाते समय जिह्वामूल, कपोल व तालु के अन्दर सुगन्ध व्याप्त कर देने वाली जो मधुर सुपारी होती है, वही पान के लिए उपादेय है। ऐसी सुपारी भगवान् शंकर के चरणकमल-चञ्चरीक (पादपद्मों में भ्रमर तुल्य) बने भक्तजनों के ही भाग्य में होती है।

शुक-पतग-पुरन्ध्री-गण्डपाण्डूनि चञ्चत्-
कनक-करक-नालोद्धारयत्नोचितानि।
त इह खलु लभन्ते नागवल्लीदलानि
त्रिपुररिपु-पदाग्रे ये तु कम्रा विनम्राः।।१३२।।

ताम्बूलपत्र- शुकपक्षिणी (मैना) के कपोल तल के समान पीत वर्ण वाले, स्वर्णमय आभा वाले, सुन्दर नागवल्ली (पान की बेल) के पत्र पान के लिए उपादेय होते हैं। इस प्रकार के उत्तम ताम्बूलपत्र उन्हीं के भाग्य में होते हैं, जो त्रिपुरारि भगवान् शंकर के चरणों में विनम्र होते हैं।

शैलोदरग्रावविशेषचूर्णं श्रीवासतोयं घनसारपूर्णम्।
ताम्बूलरागोदयजागरूकं निरन्तरं पाचनजागरूकम्।।१३३।।

१३१. आवर्त्तप्रभलोहितोवरपटी पीयूषधाराधरा ...पागी०....स्वांग०- भो., आवर्त्तप्रभलोहितोदरपटी पीयूषधाराधरा... पागी०...स्वांगो०- ब.२;

चूर्ण (चूना)- पर्वतों के अन्दर मिलने वाले विशेष प्रकार के पत्थर (चूना पत्थर) का चूर्ण, जो श्रीवास-जल (चीड़ की राल) से युक्त तथा कर्पूरचूर्ण के साथ मिश्रित होता है, वह ताम्बूल में विशेष रंग व निखार लाने वाला होता है। चूना पाचन गुण से युक्त होता है, अर्थात् पान में प्रयुक्त चूना भोजन-पाचन में सहायक होता है।

कर्पूरसार-मलयद्रु-कुरङ्गनाभि-
सम्मर्दितं खदिरभूरुहसारचूर्णम्।
यत्नेन केसरतरुप्रसवावृतं तत्
ताम्बूलरोचककरं धरणीपतीनाम्।।१३४।।

राजभोग्य ताम्बूल- कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी, खदिरसार (कत्था) एवं केसरतरु (पुन्नागकेसर) नामक वृक्ष के पुष्प को मिलाकर तैयार किया गया ताम्बूल (पान) राजाओं के लिए विशेष रूप से रुचिकर होता है।

ग्रन्थ-प्रशस्ति

स श्रीमान् स सुखी स भोजनरुचिः स प्राणिनां संश्रयः
स प्राप्नोति जगत्त्रयं च यशसा तस्यारयो नश्वराः।
तस्य श्रीर्वशतामुपैति स भवेत् क्षोणिभृतां वल्लभो
यत्कण्ठे लुठति स्फुटं रुचिवधूरत्नावलीयं सदा ।।१३५।।

अब अन्त में ग्रन्थकार अपनी रचना की प्रशस्ति करते हुए कहते हैं कि- वही श्रीमान् है, वह सुखी है, वही भोजनरुचि (भोजन के प्रति रुचि व क्षुधा वाला) है, वही प्राणियों का आश्रयदाता तथा वही त्रैलोक्य में यशस्वी होता है, तथा उसी के शत्रु नष्ट होते हैं, लक्ष्मी भी उसी के वशीभूत होती है, वही राजाओं का वल्लभ (प्रिय) बनता है, जिसके कण्ठ में यह रुचिवधू-रत्नावली सदा शोभित रहती है।

---

१३४. 'मलयेन्दु-' इति हस्तलिखित-पुस्तिकासु पाठः। 'मलयद्रु-' इति शोधित-पाठः। मलयजो मलयपर्वतजो द्रुमश्चन्दन इत्यर्थः।

इति परलकुलीशाचार्यवर्यानुजेन
द्विपभिदनुचरेण श्रीपरोङ्कारनाम्ना।
व्यरचि रुचि-चिरण्टी-कण्ठरत्नावलीयं
श्रवणपठनमात्रादङ्गिनां रोचकाय।।१३६।।

प्रस्तुत पद्य में ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थकर्तृत्व का निर्देश किया है तथा श्लोकगत विशेषणों से अपना संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया है-

परलकुलीश आचार्यवर्य के अनुज (छोटे भाई) द्विपभिद् (सिंह) के अनुचर बने हुए श्री **परप्रणव** नाम वाले कवि ने यह रचना की है, जो कि रुचिरूपी चिरण्टी (दुल्हन) के गले की रत्नावली के रूप में है। यह रचना श्रवण-पठन मात्र से ही रुचिवर्धन में समर्थ है।

लकुलीश व श्रीकण्ठ- इन दो प्रवर्त्तकों के आधार पर शैव सम्प्रदाय दो प्रकार का माना जाता है, जैसा कि कहा है-

लकुलीशोदितं शैवं श्रीकण्ठोदितमित्यपि।
सामान्यात् समयः शैवो द्विधैव परिपठ्यते।।

(शिवतत्त्वरत्नाकर, तृतीय सम्पुट- ९.४.९)

अर्थात् लकुलीश एवं श्रीकण्ठ द्वारा उपदिष्ट शैव सम्प्रदाय दो प्रकार का है। प्रस्तुत पुस्तिका के रचयिता परप्रणवाचार्य लकुलीश शैव सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। यह परम्परा दक्षिण भारत में अभी भी प्रचलित है।

अत्र स्यात् पद्यसंख्येयं षट्त्रिंशदधिकं शतम्।
शतद्वयं त्रयस्त्रिंशदुत्तरं ग्रन्थसंख्यया।।१३७।।

प्रस्तुत श्लोक में इस रचना के पद्यों की संख्या व अनुष्टुप् श्लोक के द्वारा ग्रन्थपरिमाण का निर्देश इस प्रकार किया है-

इस रचना में १३६ पद्य हैं तथा यदि इन पद्यों के ३२ अक्षर वाले अनुष्टुप् छन्द बनाए जाएं तो २३३ छन्द बनेंगे। इस प्रकार अनुष्टुप् की दृष्टि से यह ग्रन्थ २३३ श्लोक परिमाण वाला जानना चाहिए। प्राचीन परम्परा

के अनुसार ३२ अक्षरों वाले अनुष्टुप् छन्द से ग्रन्थसंख्या या ग्रन्थपरिमाण सूचित किया जाता था। अत एव कहा है- **'ग्रन्थो द्वात्रिंशद्वर्ण-निर्मितौ'** (अनेकार्थसंग्रह कोश- २.२१८)। यह मानदण्ड न केवल पद्यमय ग्रन्थ के लिए, अपितु गद्यग्रन्थ के लिए भी लागू होता है। अर्थात् गद्य के भी अक्षर गिनकर उनको ३२ से भाग देकर ग्रन्थसंख्या सूचित की जाती है।

प्रस्तुत रचना के कर्ता कवि ने ग्रन्थ-परिमाण सूचक इस पद्य के द्वारा ग्रन्थ-कलेवर का स्पष्टतया निर्देश कर दिया है। इस प्रकार के निर्देश के उपरान्त किसी अन्य लेखक द्वारा ग्रन्थ में प्रक्षेप (मिलावट) करना कठिन होता है। प्रायः देखा गया है कि अनेक ग्रन्थों में पीछे से मिलावट कर दी जाती थी। अतः इससे बचने के लिए बहुत से ग्रन्थकार अपनी रचना के अन्त में सम्पूर्ण पद्य-संख्या एवं अनुष्टुप् श्लोक में ग्रन्थ-परिमाण का उल्लेख करते थे। इसी दृष्टि से यहां भी ऐसा किया गया है।

।। इति परमपाशुपत-परलकुलीश्वरावरज-परप्रणव-विरचिता

रुचिवधू-गल-रत्नमाला समाप्ता ।

।। संवत् १९३७ पौषपूर्णिमायां लेखः *।।

---

* प्रतिलिपिकाल का सूचक यह वाक्य- भो. पुस्तिका से लिया गया है।

परिशिष्ट-१.

रुचिवधू-गल-रत्नमाला की हस्तलिखित प्रतियाँ
(एक परिचय)

हस्तलिखित प्रति भो. (भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद)

रुचिवधू-गल-रत्नमाला की यह प्रतिलिपि **भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, आश्रम मार्ग, अहमदाबाद (गुजरात)** के सौजन्य से प्राप्त हुई है। सम्पादन व पाठान्तर-प्रदर्शन के प्रसंग में इसे भो. संकेत से सूचित किया है। संशोधन-भवन के अभिलेखानुसार इसकी पृथक् संख्या नहीं है, क्योंकि यह हमें संशोधन-भवन से प्राप्त हुए **'क्षेमकूतुहल'** (हस्तलेख संख्या- ५५६४ ए) की प्रतिलिपि के साथ ही संलग्न रूप में उपलब्ध हुई है। इसमें १५ पत्र हैं तथा २९वें पृष्ठ पर लेखन पूर्ण हुआ है। इसका लेखन सुन्दर व स्पष्ट देवनागरी लिपि में है। प्रतिलिपिकाल- **संवत् १९३७ पौष पूर्णिमा** लिखा है।

इस प्रतिलिपि में कहीं-कहीं प्रान्तभाग (हाशिये) पर पाठान्तर भी लिखे हुए हैं। इनमें कतिपय पाठान्तर बहुत महत्वपूर्ण व ग्रन्थ-शोधन में सहायक सिद्ध हुए हैं। कुल १३७ श्लोकों वाली पूर्ण व अखण्डित इस प्रतिलिपि में प्रत्येक श्लोक के अन्त में संख्या भी लिखी है। कुछ स्थानों पर लेखन में पाठदोष भी उपलब्ध हुए हैं, जिनका अन्य प्रतिलिपियों के आधार पर शोधन किया गया है।

इस प्रतिलिपि के आदि व अन्त के दो-दो पत्रों की प्रतिकृति निदर्शनार्थ यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

श्रीगणेशाय नमः। यस्याः करांबुजवशाद् म्रनी-नवंति पर्णत्वणान्यपि कटाक्षनिरी
क्षणात्। निःस्वा अपि श्रिदयापादपतां लभंते सा पार्वती जयति पाकविवेकरूपिः॥१॥
गौरीमतं नलमतं सकलं विलोक्य भीमस्य भोजनृपतेरपि वीक्ष्य शास्त्रम्। लोकाय भो
जनविनोदकृतां नृपाणां माधीयते रुचिवधूगलरत्नमाला॥२॥ पथ्यादयः परिचि
ता जनयंति काले पुंसः क्षुधां रसनसंमदनांशभूताः। एषा परं रुचिवधूगलरत्न
माला सद्यः श्रुता विरुचिमुख्विनुतेऽतिचित्रं॥३॥ रत्नेऽपि भोजनमुशंति ससारमे
कं वर्णरूचेस्तदपि साधि चया कवत्याः। तस्मादनेकरचनारुचिमंति तानि कथ्योचि
तं क्रमवैशनिरूपयामः॥४॥ गौरीनलादिलिखिताखिलपाकसंपच्छ्रापारितो
दनिकसंभ्रमदर्शनीयं। स्वच्छेऽपि वैरिनरगोचरतामयातं चंद्रोपमं क्षितिभुजां

हस्तलिखित प्रति भो. (भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद) का प्रथम पृष्ठ

हस्तलिखित प्रति भो. (भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद) का द्वितीय पृष्ठ

भुजिकर्मधाम ।५। तस्यांजिरे मृगमरालचकोरकीरक्रौंचशिखंगशिखिकुर्कुट
बभ्रवश्चा। धार्यागरस्य परिहारहारधिया धनेशैः किं श्रीमतां जगति दुर्लभम
स्ति किंचित् ।६। एणो रौति स्खलति गमने राजहंसश्चकोरः स्यात्क्षिदंद्वं विरज
ति तरां वांति कृतकीरपोतः। प्रेति क्रौंचो विरज्यति कपिर्मार्धते नीलकंठः श्रा
ब्धी निःसपदि सुजनो दक्षबध्रूवि ...पेण ।७। निर्मूष्टतारनरसुंदरशुक्रवासास्त
त्कालधौतवरणः प्रियपुत्रमित्रः। स्रग्वी प्रसन्नहृदयो रसपाकवेत्ता भोक्ता भवे
द्गुचिनदानसमानसूदः ।८। निस्तप्तकांचनविभूषणभूषिताभिः श्रेणीकृतानिंप
रितः परिचारिकाभिः ।श्काश्चांकनवमंडलनास्वराणि क्षोणि ...तोकनकभो
जननाजनानि ।९। स्नातावित्सुद्धवसनानवधूपितांगी कर्पूरसारभमुखी नयना

हस्तलिखित प्रति भो. (भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद) का २७वाँ पृष्ठ

ज्यावसानकरमर्दकचंदनं स्यात् ।१२८। अगरुमलयभूरुट् दारुकर्पूरसारपवि
त्र्र्गमदंशोः साधितो धूपवर्त्तिः। अनुभवति स नित्यं भोजनान्ते दुरापां क्षितिधर
पतिकन्या यस्य वक्त्रपानरस्य ।१२९। कदलीकुटकोटरविगलितसौरभ्यभाजनं
तारं निस्नेहं मुनिमानसमिव कर्पूरं न दादेयं ।१३०। आवर्त्तमिभलोहितो वरप
टीपायूषधाराधराजिह्माम्लकपोलतालुमृदुलास्यांगलसत्सौरभातस्थैर्यभ
धुराअत्यातिपदनं पागीफलीफालिका। या जायते महेश्वरांघ्रिकमलेभंगायमाला
नरः।१३१। शुकपतगपुरंध्रीगंडपांडूनिचं चल्कनक्ककरंफनालो ह्रस्यलोचि
नानि। तद्दहरवं लुलभं तेनागवल्लीदलानि त्रिपुररिपुपदाग्रे ये तु कत्राविन
आः।१३२। श्रीलादरश्रावविशेषचूर्णश्रीवासतोयं घनसारपूर्णं तांबूलरागो

=कर्पूर१

हस्तलिखित प्रति भो. (भो.जे. अध्ययन-संशोधन भवन, अहमदाबाद) का २८-२९वाँ पृष्ठ

रुचिवधू०

१४

दयजागरूकं निरंतरंपावनजागरूकं ।१३३। कर्पूरसारमलयंजकुरंगनाभिसं
मर्दितंखदिरन्नरुहसारचूर्णयत्नेन केसरतरुप्रसवादृतं तत्तांबूलरोचक
करंधरणीपतीनां ।१३४। सश्रीमान्ससुखीसभोजनरुचिः सप्राणिनां संश्रयः
सप्राज्ञोत्रिजगत्त्रयं चयशसातस्यारयोनश्वराः। तस्यश्रीर्यशतामुपैतिसभ
चेत् क्षोणीभृतांवल्लभोयत्कंठेलुठतिस्फुटं रुचिवधूरत्नावलीयंसदा ।१३५
इतिपरलकुलीशाचार्यवर्यानुजेनद्विपभिदनुचरेणश्रीपरोंकारनाम्ना।
अरुचिरुचिचिरंटीकंवरं त्नावलीयं श्रवणपवनमात्राद्रंगिनां रोचकाय
।१३६। अत्रस्यात्त्यद्रसं स्थैर्यं मद्रिशदधिकंशतं। शतद्वयं त्रयस्त्रिंशदुत्त
रंग्रंथसंख्यया ।१३७। इतिपरमपाशुपतपरलगुलीश्वरावरजपरप्रणवि

रुचिव०

१५

रचितारुचिवधूगलरत्नमालासमाप्ता। संवत् १९३० पौषपूर्णिमायां लेख्यः॥ ॥

हस्तलिखित प्रति ब.१, प्राच्यविद्या-संस्थान,
महाराज सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात)

रुचिवधू-गल-रत्नमाला की यह प्रतिलिपि प्राच्यविद्या-संस्थान, महाराज सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात) के सौजन्य से प्राप्त हुई है। सम्पादन व पाठान्तर-प्रदर्शन के प्रसंग में इसे ब.१ संकेत से सूचित किया है। इसमें २२ पत्र हैं, जिनमें ४३वें पृष्ठ पर लेखन पूर्ण हुआ है। इसका लेखन भी सुवाच्य देवनागरी लिपि में है। इसका प्रतिलिपिकाल- संवत् १९३८ वि. है। यह भो. से परवर्ती प्रतिलिपि है। इसका पाठ भो. के अनुसार ही है। अत: प्रतीत होता है कि यह भो. पुस्तिका अथवा इसकी किसी अन्य प्रतिलिपि के आधार पर लिखी गई है।

प्राच्यविद्या-संस्थान के अभिलेखानुसार इसकी संख्या- ४६३९ है तथा विषय पाकशास्त्र लिखा है। कुल १३७ श्लोकों वाली पूर्ण व अखण्डित इस प्रतिलिपि में भी प्रत्येक श्लोक के अन्त में संख्या लिखी है। इसमें भी कुछ स्थानों पर लेखन में पाठदोष भी उपलब्ध हुए हैं; जिनका अन्य प्रतिलिपियों के आधार पर शोधन किया गया है।

इस प्रतिलिपि के आदि व अन्त के दो-दो पत्रों की प्रतिकृति निदर्शनार्थ यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

हस्तलिखित प्रति ब.१, प्राच्यविद्या-संस्थान, बड़ौदा (गुजरात) का प्रथम पृष्ठ

हस्तलिखित प्रति ब.१, प्राच्यविद्या-संस्थान, बड़ौदा (गुजरात) का द्वितीय पृष्ठ

न मुखं तिरस्कार मेकं वरयं रुचेस्तदपि सा। पिचराकवत्याः
तस्माद् नेव रचना रुचिमं चिता निकल्यो चितं क्रमयरोन
निरूपयामः॥४॥२॥ गोरीनत्वादि लिखिता खिल पाकसं
पत्व्यापारितो दिनकरसंभ्रमदर्शनीयं॥ स्वप्ने पिवेरिनर
तोचयातामयातं चक्रेपमं क्षितिभृतां भुजिक मधामः॥
५॥ तस्या निरेमृगमराल-चकोरकीर-कोंचप्रवंशि शिखिग
कुकुरत्वच्चयश्च॥ चार्यागरस्य परिहारधियाध्वनेऽस्तैः
किं श्रीमतां जगति दुर्लभमस्ति किंचित्॥६॥ ० णोरेति
स्खलति गमने राजहंसश्चकोरः स्याद्दिद्दृ विरज

हस्तलिखित प्रति ब.१, प्राच्यविद्या-संस्थान, बड़ौदा (गुजरात) का ४२-४३वाँ पृष्ठ

हस्तलिखित प्रति ब.२, प्राच्यविद्या-संस्थान,
महाराज सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात)

रुचिवधू-गल-रत्नमाला की यह प्रतिलिपि भी प्राच्यविद्या-संस्थान, महाराज सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बड़ौदा (गुजरात) के सौजन्य से प्राप्त हुई है। सम्पादन व पाठान्तर-प्रदर्शन के प्रसंग में इसे ब.२ संकेत से सूचित किया है। इसमें ११ पत्र हैं, जिनसे २२ पृष्ठ बने हैं। इसका लेखन भी सुवाच्य व स्पष्ट देवनागरी लिपि में है। इसका प्रतिलिपिकाल- शके १८१० लिखा है।

प्राच्यविद्या-संस्थान के अभिलेखानुसार इसकी संख्या- १०९६४ है तथा विषय वैद्यक लिखा है। कुल १३७ श्लोकों वाली पूर्ण व अखण्डित इस प्रतिलिपि में भी प्रत्येक श्लोक के अन्त में संख्या लिखी है। इस प्रतिलिपि का पाठ अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध है; परन्तु इसमें भी कुछ स्थानों पर लेखनगत पाठदोष हैं, जिनका अन्य प्रतिलिपियों व क्षेमकुतूहल के आधार पर शोधन किया गया है।

इस प्रतिलिपि के आदि व अन्त के दो-दो पत्रों की प्रतिकृति निदर्शनार्थ यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

हस्तलिखित प्रति ब.२, प्राच्यविद्या-संस्थान, बड़ौदा (गुजरात) का प्रथम पृष्ठ

हस्तलिखित प्रति ब.२, प्राच्यविद्या-संस्थान, बड़ौदा (गुजरात) का २१वाँ पृष्ठ

मस्तिकानि वारणार्थं यं जनार्थं स्त्रीभिः स्पर्शः कार्यः परीक्षितास्त्रियश्रेवयं जनो
दकधूपनैः वेषाभरणसंयुक्ताः संस्पृष्टो मुः समाहिताः। एवं प्रपञ्चं कु [illegible] तपान्नास
खंडयुति मिलित सरसिज क्षिपेन्मुद्रितां स्यात्॥ तेषामाहृष्टमंभः प्रतिदिनमम
लं न्यस्तकर्पूरसारं भोज्यां तेपीतमात्रं जरयति सकलाहारमायुः करो
ति॥२७॥ कृष्णागुरुप्रतनुकल्ककषायमंतः कर्पूरसाररजसा च वसना
थगुच्छैः॥ आज्ञाधितत्रिपुरवैरिपदांबुजानां भोज्यावसानकरमर्दक
चंदनं स्यात्॥२८॥ अगरुमलय [illegible] कर्पूरसा प्रथितमृगम
दांशैः साधितं धूपवर्ति [illegible] अनुभवति स नित्यं भोजनान्ते दुरापं
क्षितिधरपतिकन्यायस्य नम्या नरस्य॥२९॥ कदलीकोटरविगलि
तसौरभभाजनं तार॥ निःस्नेहमुनिमान समिव X कुट X कर्पूरं ततरा
देयं॥३०॥ आवर्तज्वराजितोदरपटी पीयूषधाराधरो जिह्वामलक
पोलतालुमकुली स्थाप्यो गोल सत्सौरभा॥ तस्येयं मधुरा प्रयाति वदनं
पौगीफलीफालिका योज्यायेत महेश्वरांघ्रिकमले भृंगायमाणेन
र॥३१॥ शुकपतगपुरंध्री गंडपांडूनि चंचत्कनककरकनालोज्ज्वल

सनगध्यासनासनेस्माते
पणमाध्यनेचेवमर्यालंकारकेष्पुच

हस्तलिखित प्रति ब.२, प्राच्यविद्या-संस्थान, बड़ौदा (गुजरात) का २२वाँ पृष्ठ

परमपाशुपत-श्रीमत्परप्रणवकवि-विरचिता

रुचिवधू-गल-रत्नमाला

(मूलपाठ)

(वसन्ततिलका छन्द १-६)

यस्याः कराम्बुजवशादमृती भवन्ति
पर्णतृणान्यपि कटाक्षनिरीक्षणाच्च।
निःस्वा अपि त्रिदशपादपतां लभन्ते
सा पार्वती जयति पाकविवेकभूमिः।।१।।

गौरीमतं नलमतं सकलं विलोक्य
भीमस्य भोजनृपतेरपि वीक्ष्य शास्त्रम्।
तोषाय भोजनविनोदजुषां नृपाणा-
माधीयते रुचिवधू-गल-रत्नमाला।।२।।

पथ्यादयः परिचिता जनयन्ति काले
पुंसः क्षुधां रसनसम्मदनांशभूताः।
एषा परं रुचिवधू-गल-रत्नमाला
सद्यः श्रुतापि रुचिमुच्चिनुतेऽतिचित्रम्।।३।।

राज्येऽपि भोजनमुशन्ति ससारमेकं
वश्यं रुचेस्तदपि सापि च शाकवश्या।
तस्मादनेकरचनारुचिमन्ति तानि
कल्पोचितक्रमवशेन निरूपयामः।।४।।

गौरी-नलादि-लिखिताखिल-पाकसम्पद्-
व्यापारितौदनिक-सम्भ्रम-दर्शनीयम्।
स्वप्नेऽपि वैरिनरगोचरतामयातं
चन्द्रोपमं क्षितिभृतां भुजिकर्मधाम।।५।।

तस्याजिरे मृग-मराल-चकोर-कीर-
क्रौञ्च-प्लवङ्ग-शिखि-कुर्कुट-बभ्रवश्च।
धार्या गरस्य परिहारधिया धनेशैः
किं श्रीमतां जगति दुर्लभमस्ति किञ्चित्।।६।।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

एणो रौति स्खलति गमने राजहंसश्चकोर-
स्याक्षिद्वन्द्वं विरजतितरां वान्तिकृत् कीरपोतः।
रौति क्रौञ्चो विसृजति कपिर्माद्यते नीलकण्ठः
शब्दप्रीतिं सपदि सृजतो दक्ष-बभ्रू विषेण।।७।।

(वसन्ततिलका छन्द ८-१२)

निर्मृष्टताररतर-सुन्दर-शुक्लवासा-
स्तत्कालधौतचरणः प्रियपुत्रमित्रः।
स्रग्वी प्रसन्नहृदयो रसपाकवेत्ता
भोक्ता भवेदुचितदानसमानसूदः।।८।।

निस्तप्तकाञ्चन-विभूषण-भूषिताभिः
श्रेणीकृतानि परितः परिचारिकाभिः।
राकाशशाङ्क-नवमण्डल-भास्वराणि
क्षोणीभृतां कनकभोजनभाजनानि।।९।।

स्नाता विशुद्धवसना नवधूपिताङ्गी
कर्पूरसौरभमुखी नयनाभिरामा।
बिम्बाधरा शिरसि बद्धसुगन्धपुष्पा
मन्दस्मिता क्षितिभृतां परिवेषिका स्यात्।।१०।।

पारङ्गतः सकलवैद्यकसंहितानां
सत्पाकशासनबुधो गुरुवत् प्रगल्भः।
ब्रूयादिदं नरपतेः परिवेषकाले
धन्वन्तरि-प्रतिनिधिर्भिषजां वरेण्यः।।११।।

देवावधारय महौदन-सूपसर्पिः
शस्तोद्भिदां च शुचि रोचय तेमनानि।
नैवामिषं यदपराधपराङ्मुखानां
क्षेमङ्करस्त्वमसि काननवासभाजाम्।।१२।।

(स्रग्धरा छन्द)

सद्यः शालेयमन्नं शशिकरनिकरप्रोज्ज्वलं सिद्धसारं
भ्राम्यद्बाष्पच्छलेन त्रिदशपुर-सुधाधेय-माधुर्यतत्त्वम्।
अन्योन्यं नैव लग्नं परिमलभरितागारवेदीविभागं
स प्राप्नोति प्रसन्नः प्रमथपरिवृढो यस्य पुंसां वरस्य।।१३।।

(वसन्ततिलका छन्द १४-१६)

तां कण्डितां दधिविमर्दितमुद्गदालीं
संसाधितां लवणरामठगन्धगर्भाम्।
ते भुञ्जते कुमुदिनीदयितार्द्धमूर्द्धा
येषां सदा हृदयवारिरुहे निषण्णः।।१४।।

माञ्जिष्ठवारिरुचिहारि तनूष्मधारि-
सौरभ्यभारि रुचिसारि विलोभकारि।
भुङ्क्तेऽनिशं स खलु सर्पिरिदं नवीनं
यः पार्वतीचरणमूल-विलोलमौलिः।।१५।।

निर्नीरपाचितपयःप्रहिताष्टमांश-
शालेयतण्डुलभवं निभृतान्तरोष्म।
तत्पायसं सरसमावसथं सुधायाः
को लेढि भूभृत ऋते घृततारखण्डैः।।१६।।

(अनुष्टुप् छन्द १७-१८)

सरसाः पटलैरेताः पुराणस्येव संहिताः।
हसन्तीव सितत्वेन फेनिका मेनिकापतिम्।।१७।।

उत्कृष्टशर्करापाकैर्योजिताशोकवर्त्तिभिः।
बद्धः कर्पूरयुक्तिर्मोदकश्चित्तमोदकः।।१८।।

(मालिनी छन्द)

जलविलसितकल्पः शुद्धगोधूमपुञ्जः
प्रबलदृषदि कामं कण्डितः सैन्धवेन।
अपगततुषभावस्तेन चीनांशुकश्री-
समपहरणयोग्या मण्डकाः स्विन्नवृत्ताः ।।१९।।

(स्रग्धरा छन्द)

क्षीरं प्रक्षीणनीरं क्वथितमतितरां रागवत्तामुपेतं
ब्रह्मक्षोणीजकल्कश्रितममृततलस्थायिपङ्कानुकारम्।
व्यामिश्रं खण्डमण्डैः प्रदलितमरिचक्षोदसौरभ्यगर्भं
कोष्णं सञ्जातपाकं नरवरवदने लीयते क्षीरसारम् ।।२०।।

(उपजाति छन्द)

आगालितं वाससि सप्त वारान् विपाचितं गैरिकरागगौरम्।
दृढीकृतं मृन्मयनूत्नपात्रे प्ररोचनं गोलकदुग्धमेतत्।।२१।।

(वियोगिनी छन्द)

मरिचार्द्रक-जीर-सैन्धव-त्वच-वाह्लीकनितान्तमिश्रितः।
तलितस्तिलतैलमध्यगः प्रश्रृतः कोरवटो रुचिप्रदः।।२२।।

(शार्दूलविक्रीडित)

वाह्लीकार्द्रक-जीरकप्रभृतिभिः प्रत्येकसाक्षीकृता
गच्छन्ती शतपत्रपुष्पतुलनां माषेण्डरी पाण्डुरा।
तैलाक्ता नवरामठाङ्गज-महाधूपान्धकारस्थिता
मुक्तीच्छोरपि सौरभेण नयते जिह्वालतां लोलताम्।।२३।।

(वसन्ततिलका छन्द)

वाह्लीक-जीरक-नवार्द्रकपूर्णगर्भा
बाष्पेण जातपचना नवमाषपिण्डाः।
चूर्णीकृताः सुरभिहिङ्गुकृताधिवासाः
मन्दानलस्य रुचिदः खलु पुरणोऽयम्।।२४।।

(स्रग्धरा छन्द)

दिग्धो वाह्लीकतोयै: रजनिरसयुतो गोचर: सूर्यरश्मे-
रुत्क्षिप्योत्क्षिप्य पात्रे तिलरससहित: पाचित: सैन्धवेन।
जात: स्निग्ध: सुगन्धिर्मरिचपरिचित: पाकरागं दधानो
दुर्नामारातिकन्द: सपदि जनयति प्राशितो जाठराग्निम्।।२५।।

(शार्दूलविक्रीडित)

कन्द: सुन्दरमृत्तिकाभिरभित: संवेष्टितो यत्नत:
कारीषानलपाचितस्त्वगधन: क्षोदीकृतो मिश्रित:।
शुद्धै: सैन्धव-तैल-जीरक-जरज्जम्बीरनीरार्द्रकै-
र्जाड्यं खाण्डवखण्डतोऽपि हरते वह्नेरयं सूरण:।।२६।।

(वसन्ततिलका छन्द)

आत्मम्भरि: प्रवरसैन्धवशृङ्गवेर-
वाह्लीक-जीर-मरिचै रुचिरप्रयुक्तै:।
निर्वापित: सुरभिणो मथितस्य मध्ये
कल्पेत घोलवटको रुचिसम्पदे स:।।२७।।

(शिखरिणी छन्द)

कणान् गोधूमानामपगततुषाणां सुरभिते
जले बद्ध्वा ग्रन्थौ परिलघु निदध्याद्दिनयुगम्।
ततस्तोये तस्मिंल्लवणमुदकुक्षिम्भरिरयं
स्थित: पक्षं यावद् भवति रुचिदाश्चर्यवटक:।।२८।।

(आर्या छन्द)

तैलपचेलिम-चिञ्चाजल-गुडमिलितो मरीचसंयुक्त:।
प्रविशति चिञ्चावटक: सुकृतिन एवाननं रसिक:।।२९।।

(उपजाति छन्द)

वाह्लीकधूमाकुलपात्रमध्ये
सराजिकं वारि क्रिमेरपीत:।

तत्रारनालोदकपूरवर्त्ती
सराजिकोऽयं वटकः पटीयान् ।।३०।।

(शिखरिणी छन्द)

अजाजी-वाह्लीकार्द्रक-मरिच-सिन्धूत्थभरितः
सुपाकः स्वादीयान् दधिमथितदालीविरचितः।
कृतैलासंवासः क्वथितमथिते स्वैरमुषितो
विहन्तायं साक्षादरुचिज-रुजामम्लवटकः।।३१।।

(अनुष्टुप् छन्द)

तलितं हिङ्गुतैलाभ्यां सैन्धवेनावचूर्णितम्।
मरिचै रुचिमाधत्ते पूर्वदंशः पटोलकः।।३२।।

(उपजाति छन्द)

वाह्लीकसौरभ्यभृति प्रशस्तं शिरोन-कोशातकमुष्णतैले।
विपाचितं वेल्लजचूर्णकीर्णं रुचिं विधत्तेऽभ्यवहारकाले।।३३।।

(अनुष्टुप् छन्द)

पाके हरति वार्त्ताकं तैल-वाह्लीक-सैन्धवैः।
सिद्धं मरिचसम्बद्धं कोष्णमेव रुचिप्रदम्।।३४।।

(वसन्ततिलका छन्द)

निष्पावकस्य तलिता नवबीजकोशी
तैलेन हिङ्गुमरिचेन च सैन्धवेन।
प्रभृष्टकल्प-तिलकल्क-कृतप्रवापा
मान्द्यं धुनोति जठरान्तरवर्त्तिवह्नेः।।३५।।

(वियोगिनी छन्द)

दलितं तलितं सरामठं नवबिम्बीफलमाप्तसैन्धवम्।
मरिचैरवचूर्णितं हरिल्लघुपाकेन करोति रोचकम्।।३६।।

(उपजाति छन्द ३७-३८)

कन्दः कदल्या दलितो नितान्तं सरामठश्चूतफलेन राद्धः।
उद्धूलितः सैन्धवरेणुनायं मरीचसम्पर्कित एव रुच्यः।।३७।।

सहिङ्गुतैलाक्तमपास्तवोचं मोचाफलं सैन्धवसारशालि।
मरीचचूर्णप्रतिवापयोगान्निरूढवह्निं तरली करोति।।३८।।

(इन्द्रवज्रा छन्द)

एर्वारु-कर्कारु-पटोल-बिम्बी-
वार्त्ताक-कोशातक-भूरिशाकाः।
एकीकृताः सेवितसैन्धवाद्याः
संवावदूका हि सुधारसस्य।।३९।।

(वसन्ततिलका छन्द)

प्रभृष्टतण्डुलसमीकृतनालिकेर-
पिष्टं सहैव मरिचेन तथोदकेन।
वार्त्ताकमुत्तमघृतैरमुना च राद्धं
सिन्धूदरानलमिवानलमातनोति।।४०।।

(मालिनी छन्द)

विदलितमुखमीषत् कारवेल्लं कठोरं
विपुल-विमल-तैले साधितं सैन्धवेन।
भरित-मरिचचूर्णं सौरभेणातिपूर्णं
तदखिलरसवर्गे वामतां सन्तनोति।।४१।।

(उपजाति छन्द)

विदार्य कूष्माण्डमखण्डखण्डं
विपाचितं रामठतैलयोगे।
विभावितं वेल्लजसैन्धवाभ्या-
मास्वादितः पाणिलिहः करोति।।४२।।

(वसन्ततिलका छन्द)

ईषद्विदार्य मरिचैः परिपूरितास्यं
तैलेन राद्धमथ सैन्धवजातयोगम्।
वाह्लीकतोयपृषता विहिताभिषेकं
कर्कोटकीफलमिदं रुचिपूरमाद्य।।४३।।

(मालिनी छन्द)

कृतयवस-विवेकाम्लान-वास्तूकशाकं-
क्वथित-विमलतैल-प्राप्तहिङ्गुप्रसङ्गम्।
लवण-धनिकजुष्टं शृङ्गवेरोपसृष्टं
चपलयति रसज्ञां वीक्षणादेव पुंसाम्।।४४।।

(पुष्पिताग्रा छन्द)

कतिपय-करमर्द्दकैरुपेतं नवदल-कोमल-तण्डुलीयशाकम्।
तिलरसपरिपाकहिङ्गुसङ्गि लवणविपाचितमग्निमान्द्यमन्थि।।४५।।

(वसन्ततिलका छन्द)

पत्राधिका प्रथमकन्दलकासमर्द्दी-
पूली गलद्विमलतण्डुलपिष्टलिप्ता।
सिद्धा घृतेन मरिचैरवचूर्णिता च
जायेत सापि रुचिकृत् खलु सज्जनानाम्।।४६।।

(उपजाति छन्द)

कर्कारुखण्डं घृतदुग्धराद्धं
विभावितं वेल्लजशर्कराभ्याम्।
कृतैलवासं च कटूष्णमेतत्
प्रतिक्षणं रोचकमातनोति।।४७।।

(उपेन्द्रवज्रा छन्द)

जलेन राद्धं शतधा निकृत्तं
सितान्यरम्भाकुसुमं नवीनम्।
सितान्तरक्षीरविपाचितं त-
न्मनो धिनोति प्रचितं मरीचैः।।४८।।

(मालिनी छन्द)

मुनिफलदलशाकं स्वेदितं पाणिपिष्टं
क्वथित-विमल-तैले हिङ्गुना लब्धवासम्।
लवण-मरिचपातस्वादुवत्तां दधानं
भवति रुचिदमुच्चैरामचूर्णेन राद्धम्।।४९।।

(अनुष्टुप् छन्द)

मुद्गजीरक-वाह्लीक-स्वर्जिका-मरिचाञ्चिता:।
अरोचक-जिगीषूणां पर्पटा: पुरतो भटा: ।।५०।।

(वसन्ततिलका छन्द)

आह्लादिका युवदृशां मृदुना स्वरेण
दष्ट्वा द्विजैरपि विचूर्णित-सर्वगात्रा।
स्नेहाधिका विहसिता रुचिराजपुत्र्या:
शुश्रूषिका कुरवटी रुचिरा वधूटी।।५१।।

(अनुष्टुप् छन्द)

क्षाराम्लकृतसंस्कारसिद्धा तैलविपाचिता।
अरोचकनिमित्तानां कर्त्तरी कटुकर्चरी।।५२।।

(वसन्ततिलका छन्द)

अङ्गारपाकदलितानि फलानि धात्र्या-
स्तैलेन जीरलवणेन विभावितानि।
वाह्लीकधूप-धयनाधिक-सौरभाणि
सन्धुक्षयन्ति जठरानलमाहृतानि।।५३।।

(आर्या छन्द)

निर्धूमानलपाचितमामं वार्त्ताकमुज्झितं बीजै:।
आर्द्रक-निम्बुक-सैन्धव-तैलैरालोडितं रुचिरम्।।५४।।

(वसन्ततिलका छन्द)

आलोहितं कठिन-कोमल-तन्दुलीय-
मुद्बाष्पितं सलिलकाञ्जिकमेलकेन।
पिण्डीकृतं लवण-तैल-परीतमेत-
न्मन्दाग्निमङ्कुरयति श्रितहिङ्गुवासम्।।५५।।

(रथोद्धता छन्द)

काञ्जिकेन मधुरेण मुहूर्त्तं स्वेदित: कुटजपुष्पगुलुच्छ:।
पीडित: सलवण: सह तैलैर्याति हिङ्गु सुरभी रुचिमत्त्वम्।।५६।।

(अनुष्टुप् छन्द)

स्विन्ना निष्पीडिताः कामं कोमलाश्चूतपल्लवाः।
तैल-सिन्धूत्थ-सम्मिश्रा रुच्या रामठवासिताः ।।५७।।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

काकाण्डोला-फलमविकलं कोमलं स्विन्नमीष-
त्तैले हिङ्गुप्रणयिनि ततो वेसवारेण राद्धम्।
मध्ये न्यस्तं क्वथितमथिते वासिते रामठेन
स्वादं स्वादं विधुवति शिरः स्वर्गराजो नितान्तम्।।५८।।

(वसन्ततिलका छन्द)

निश्शोधिताखिलशिरावलि वृत्तखण्डं
दण्डाहतेन कृतपाकमगारजन्याम्।
हिंग्वा गृहीतलवणं सुरभीकृतं च
कोशातकी-फलमिदं मरिचेन रुच्यम्।।५९।।

(मालिनी छन्द)

हरितभरितशम्बा ग्रामनिष्पावकस्य
प्रथममुदकसिद्धा कालशेयेन रुद्धा।
लवण-मरिच-सङ्गात्तैलहिङ्गुप्रसङ्गा-
च्छिखरयति बुभुक्षां कुर्वतः सापि वीक्षाम्।।६०।।

(उपजाति छन्द)

नवं पटोलं विहिताल्पखण्डं विशुद्धदण्डाहतजातपाकम्।
व्याघारितं हिङ्गुकणेन तैले ससैन्धवं बोधयति क्षुधां तत्।।६१।।

(वसन्ततिलका छन्द)

पिष्टाभिधानममलं फलमस्तबीजं
तक्रे समं हरितधान्यकसैन्धवाभ्याम्।
संसाधितं सुरभितं नवरामठेन
जिह्वालतां तदपि नर्त्तयति प्रकामम्।।६२।।

(शार्दूलविक्रीडित)

वार्त्ताकं दलितं न वृन्तचलितं संस्वेदितं वारिणा
शुद्धोदस्विति धान्यकार्द्रक-निशासम्पर्कितं पाचितम्।
सक्षारं मरिचावचूर्णितमथो तैलेन हिंग्वा लस-
द्वासं दारुमयेऽपि पुंसि कुरुते घ्रातं क्षुधाबोधनम्।।६३।।

(पुष्पिताग्रा छन्द)

सलिलपरिचितं मुखे कृशानो-
रथ मथितेन विपाचितं सुधावत्।
सलवणमरिचं सहिङ्गुवासं
रुचिजनकं गिरिमल्लिका-फलं स्यात्।।६४।।

(वसन्ततिलका छन्द)

बिम्बीफलं सकलमेव निधाय तैले
तप्तं ससैन्धवमिदं मुहुरुत्क्षिपेच्च।
सोपस्करं क्वथितमत्र निपात्य तक्रं
व्याघारयेत्तदपि दीपनमेव वह्नेः।।६५।।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

वाष्पीशाकं गतचरदिनोदस्विदारब्धपाकं
साकं चूर्णैर्लवणसहितैः शृङ्गवेरप्रसूनैः।
मध्येतैलं गतवति लये कर्करे हिङ्गुजन्ये
तेनाघ्रातं नयति सुतरामाश्रयाशप्रकाशम्।।६६।।

(वसन्ततिलका छन्द)

निम्बस्य कोमलतराणि दलानि तैले
पक्त्वा क्षिपेत्तदनु पाचितमेव तक्रम्।
शालेयतण्डुलकणैः सह सैन्धवेन
व्याघारितं तदतिरोचनमेव लेह्यम्।।६७।।

(स्वागता छन्द)

अग्निमन्थ-नवपल्लव-सिद्धं तैलपाचितमुदश्विति राद्धम्।
क्षिप्तसैन्धवरजो नवहिंग्वा जायते सुरभितं रुचिकारि।।६८।।

(उपजाति छन्द)

तैलेन कन्दस्तलितो यथावत्
तक्रेण राद्धः सह सैन्धवेन।
सुगन्धिरेलारजसा निकामं
नखम्पचः स्वादुतरः प्रलेहः।।६९।।

(शिखरिणी छन्द)

अजाजी-धान्याकस्तबक-रजनी-तण्डुलकणैः
समं पिष्टं तक्रं क्वथितमथितं सारिवफलम्।
युतं सिन्धूत्थेन ज्वलित-नववाह्लीकसुरभिः
प्रलेहः सन्देहं जनयति सुधाया निजरसे।।७०।।

(वसन्ततिलका छन्द ७१-७३)

तोयाल्पसिद्धबृहतीफलखण्डमिश्रं
दण्डाहतं चिरविपाचितमार्द्रकेण।
चूर्णेन सैन्धवभवेन विभावितं च
वह्निं प्रपञ्चयति वायुरिवाचिरेण।।७१।।

तक्रं चिरक्वथितमर्पितशृङ्गवेरं
निष्पिष्ट-सैन्धवरजो-मरिचाल्पचूर्णम्।
एलाभवेन रजसा सुरभीकृतं तत्
तूर्णं तरङ्गयति भुक्तवतां रसज्ञाम्।।७२।।

नारङ्गकेसरमपाकृतबीजपुञ्जं
योऽश्नाति खण्डमरिचोत्थितचूर्णमिश्रम्।
अन्नं गले विशति तस्य नरस्य शीघ्र-
माहन्यमानमिव तेन चपेटकेन।।७३।।

(उपजाति छन्द)

विभावितं शुभ्रसितामरीचै-
रेलारजोभावनयातिरुच्यम्।
जीवातवे तस्य नरस्य भोक्तुः
जम्बीरजं केसरमाद्रियन्ते।।७४।।

(अनुष्टुप् छन्द ७५-७६)

तिलकल्कं सनिम्बूक-सैन्धवार्द्रकमत्ति यः।
तस्यामितम्पचः पुंसो वह्निर्यदि स कल्पते।।७५।।
अश्नतः कृतसंस्कारं बीजपूरस्य केसरम्।
शाकिनीभिरिवाकृष्टं विशत्युदरमोदनम्।।७६।।

(वसन्ततिलका छन्द)

आम्रातकस्य नवताम्ररुचः प्रवालाः
खण्डीकृता लवणभिन्ननिपीडिताश्च।
वाह्लीकधूपनजुषस्तिलतैलदग्धाः
सन्दीपयन्ति पवनस्य सखायमेते।।७७।।

(उपजाति छन्द)

कूष्माण्डखण्डानि ससैन्धवानि
तनूनि सर्म्मदनपीडितानि।
जम्बीरनीरस्नुतशृङ्गवेरैः
समानि वह्नेरति दीपनानि।।७८।।

(मालिनी छन्द)

शकलितमतिसूक्ष्मं बालमूलस्य मूलं
लवणमथितमुच्चैः पीडितं पाणियन्त्रे।
सुरभितमथ हिंग्वा तैलनिम्बूरसाक्तं
भवति जठरवह्नेस्तूर्णमुद्दीपनाय।।७९।।

(वसन्ततिलका छन्द)

राकाशशाङ्कधवलं दधि वीतनीरं
निक्षिप्तसैन्धव-दलीकृतशृङ्गवेरम्।
कर्पूरनीरसुरभिकृतमास्ययोगाद्
उद्दीपितो भवति जाठरजातवेदा:।।८०।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

निक्षिप्तं मथिते घृतेन सहितं जम्बालितं शर्करा-
धूलिभिर्मरिचोत्थितेन रजसा व्यालोडितं किञ्चन।
मल्ली-चम्पक-केतकी-सुरभितं मृत्पात्रमध्यस्थितं
जिह्वाया विदधाति पक्त्रिममिदं मोचाफलं चापलम्।।८१।।

(मालिनी छन्द ८२-८३)

मधुरमथितमध्ये राजिकां संक्रमय्य
त्वगधनमथ मोचं पातयेत्तत्र पक्वम्।
करविलुलितमेतद्वासितं तच्चतुर्भि:
स्थितमपि नयनाग्रेऽरोचके जागरूकम्।।८२।।

लवणकणविमिश्रा: स्वादुदैर्वारुखण्डा:
कठिनकरविगाढा वस्त्रनिष्पीडिताश्च।
दधि-विलुलित-राजीचूर्ण-संस्कारवन्तो
भवति रुचिनिदानं राजिकासिद्धमेतत् ।।८३।।

(वसन्ततिलका छन्द ८४-८६)

एर्वारुकं विदलितं लवणेन मिश्रं
नि:शेषिताम्बुकणमुज्झितशुभ्रखण्डम्।
चिञ्चारसेन मरिचेन तथैलया च
जुष्टं विबोधयति मारुतमित्रमेतत् ।।८४।।

क्षाराम्लबालफलिनश्चणकप्रवाला:
सम्मर्दिता मरिचसैन्धवशृङ्गवेरै:।
चूर्णीकृतै: रुचक-केसर-तैलदिग्धै:
रुच्य: सघोलचणक: कृतहिङ्गुवास:।।८५।।

रात्रौ निशाकरतुषारकणावकीर्णे
प्रान्ते निशामृदुलमारुतवीजिते च।
छिन्ने शिलाद्युतिभवं नवभाजि बीजे
हेमन्तवालुकफलेऽमृतमस्ति गूढम्।।८६।।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

वृन्तच्छिन्न: सलिलविधृत: कृष्टतन्तुप्रतान:
कम्बुभ्राता जलविलसितोत्कृत्तजम्बीरजुष्ट:।
मध्ये मध्ये तनुशकलितेनार्द्रकेणातिपूर्ण:
स्वादुस्तूर्णं भवति नितरां गर्भदण्ड: कदल्या:।।८७।।

(उपजाति छन्द)

वंशाङ्कुराश्चन्द्रकरानुकारा विभाविता: सैन्धवनिम्बुकाभ्याम्।
विकीर्णखण्डीकृतशृङ्गवेरा जलेऽपि वह्निं लघु दीपयन्ति।।८८।।

(वियोगिनी छन्द)

मुकुल: सहकारशाखिन: शतखण्डीकृत-सैन्धवार्दित:।
दधिलेश-मरीच-संस्तुतश्चिरजातामरुचिं छिनत्ति स:।।८९।।

(वसन्ततिलका छन्द)

कुम्भोद्धृतं तरणिसारथिसूतिकाले
कह्लारसौरभकिरस्य सरोवरस्य।
आगालितं शिशिरितं कनकानुकास्थं
पेयं जलं भवति चन्दनचन्द्रवासम्।।९०।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

एकं पाकविशेषसौरभ-जरज्जम्बीरनीरं गुरु-
ग्रावग्रन्थिक-दर्पित-क्षितिधरस्रोतोजलांशं दश।
सप्तांशा च सिता विमिश्रमखिलं कर्पूरधूपार्पणा-
देतत् पानकमानको रुचिवधूपूर्वप्रदेशेऽग्रत:।।९१।।

(वसन्ततिलका छन्द ९२-९५)

धान्याम्लमच्छतर-यामनु-वारिहारि
शुण्ठीरजो लवणजीरकसस्तुतं यत्।
आवासितं सुरभिहिङ्गुकणेन यत्नात्
तेनाशुशुक्षणिकणोऽनणुतां प्रयाति।।९२।।

आपो निरस्थिसहकारफलस्य खण्डै-
र्मिश्रीकृता दिनयुगं वसनेन पूता:।
आलोलिता लवण-जीरक-शृङ्गवेरै-
रास्वादिता: सपदि कन्दलयन्ति वह्निम्।।९३।।

एला-महौषधि-विभावितमाणिमन्थ-
संसिद्धमामकरमर्द्दक-काञ्जिकं यत्।
मन्दं विवर्धयति जाठरवीतिहोत्रं
निर्वाणदीपमिव गन्धकचूर्णयोग:।।९४।।

य: काञ्जिकं पिबति सेवित-राजिकांशं
संभ्रान्त-लावणक-मिश्रितकालशेयम्।
तस्याग्निरोदनघृतैर्न शमं प्रयाति
प्रस्फूर्त्त और्व इव वारिधिवारिपूरै:।।९५।।

(पुष्पिताग्रा छन्द)

मथितमनुगतं विशुद्धिमद्भिर्मधुघृतमर्दित-शर्करापरागै:।
समरिचमगरुप्रकारधूपं तदिह विराजति निर्मला रसाला।।९६।।

(आर्या छन्द ९७-९८)

मथित-सैन्धव-जीरक-दलितार्द्रक-सङ्गतं कियन्मथितम् ।
एलारजसा वासितमशितुर्जठराग्निमुन्नतिं नयति ।।९७।।

गतचरवासरतक्रं वस्त्रेणागालितं ससैन्धवक्षोदम्।
रुचिकरधूपनधूमैर्धूपितमचिरेण रोचनं भवति।।९८।।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

एला-शुण्ठी-प्रवरलवणैः पक्वजम्बीरतोयैः
सार्द्धं ह्यस्तं दधि निमथितं नीतसारं क्रमेण।
भूयो भूयो रयिविमथितं तूर्यभागाम्बुवृद्धं
कूरद्वेषं हरति रुचिरं तक्रमेतन्निपीतम्।।९९।।

(उपजाति छन्द)

विपाचितक्षीरभवेन दध्ना संसाधितं स्वीकृतशृङ्गवेरम्।
मृत्पात्रनेयं शशिगन्धधेयं तत्कालशेयं नरदेवपेयम्।।१००।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

पाकाक्रान्तनिदानशोणमधुरं स्निग्धोल्लसत्सौरभं
सद्यः सैन्धव-शृङ्गवेर-शकलैर्जिह्वाप्रमोदप्रदम्।
कर्पूरेण गुणाधिकेन दधि यत् पात्रान्तरे धूपितं
पीयूषं विजहाति जातु लभते शक्रोऽपि तक्रं यदि ।।१०१।।

(स्वागता छन्द)

मृत्त्वचारहितमङ्कुरवच्च क्षालितं विमलशारदतोयैः।
भावितं लवणनिम्बुपयोभिर्बालमार्द्रकमुमापतियोग्यम्।।१०२।।

(वसन्ततिलका छन्द)

तैलासुरी-रजनी-सिन्धुज-कल्कसङ्गि
प्रस्यन्दमान-नवनिम्बुरसानुषङ्गम्।
स्वादूत्तरं शिशिरवासरभोजनेषु
कस्येतिवर्णनपथं खलु शृङ्गवेरम्।।१०३।।

(स्रग्धरा छन्द)

स्विन्नं धात्रीफलं यज्ज्वलदनलशिखासन्निभं स्निग्धपात्रे
क्षिप्तं प्रभृष्टवाष्पीकण-रजनिरजस्तैल-सिन्धूत्थदिग्धम्।
आकृष्टं जातपाकं कतिपयदिवसैरुल्लसत्सौरभाढ्यं
तस्य स्वादानुवादे पतिरपि न गिरामीश्वरः कस्तदन्यः।।१०४।।

(उपजाति छन्द)

उदारबिम्बीफललम्बि बालं बिल्वं नखच्छेद्यमजातबीजम्।
आनीय कृत्तं लवणाम्बुमध्ये निवेशितं तद्धुजिरोचकाय।।१०५।।

(मालिनी छन्द)

प्रथमकुटज-शिम्बी पूर्वमम्लावलोड्या
लवणसलिलमध्ये वासिता सप्तरात्रम्।
परिणति-समकालं पीतिमानं दधाना
भवति सुकृतभाजां भोजने सातिरुच्या।।१०६।।

(अनुष्टुप् छन्द)

मधुरं च कषायं च हित्वा रसचतुष्टयम्।
मय्यस्तीति चतुःकालं निम्बूकं किमु शंसति।।१०७।।

(मालिनी छन्द १०८-१०९)

मरकत-रुचिराभा बालशोणाकशम्बा
निशिततरकृपाणी-त्र्यङ्गुलव्यक्तखण्डा।
तिलभवरस-राजी-सिन्धुजोषानुविद्धा
जनयति रुचिमुच्चैर्भोजने भाग्यभाजाम्।।१०८।।

द्विपबलपतिदन्तप्रान्तशोभानुकारं
तिल-जलधिजरात्रीराजिकान्तःप्रचारम्।
कवलयति नितान्तं राजवंशाङ्कुरं सः
प्रमथपरिवृढेन प्रेषितो यः कटाक्षैः।।१०९।।

(स्रग्धरा छन्द)

आमाम्राणि प्रवालैः सह रजनि-तिल स्नेह-सिन्धूत्थभाञ्जि
स्निग्धे तैलस्य पात्रे दश दिनमुषितान्यासुरीसौरभाणि।
मध्ये दध्योदनस्य प्रशमितदहनस्यापि रुच्यानि जन्तोः
सेवन्ते तेऽत्र येषाममृतकरकलाशेखरः सानुकम्पः ।।११०।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

धौतं कुञ्जरदन्तकर्त्तनसमं सिन्धूत्थ-तैलासुरी-
रात्रिसंक्रमितोत्तरोत्तररसं मूलं नवं शिग्रुजम्।
तस्याहो वदनान्तरे निविशते श्रीचन्द्रचूडप्रिया-
पादाम्भोरुहरेणुरञ्जितशिरा यः प्राच्यकाले पुमान्।।१११।।

(मालिनी छन्द)

मसृण-लवण-दोषा-राजिका-तैल-सङ्ग-
प्रशमित-वदनार्त्ति-प्रौढकण्डूलभावः।
मथित-मथितकूरप्रीतिभाजां नृपाणां
भवति सपदि रुच्यः सूरणः पूरणाय।।११२।।

(शिखरिणी छन्द)

चतुःखण्डं वृन्तावधि लघुबृहत्याः फलमपि
क्षपाधूली-तैलासुरि-लवण-निम्बूद्रवयुतम्।
त्र्यहादूर्ध्वं सिद्धं भवति दधिभक्ते सुरुचिदं
न दन्ताग्रग्रस्तं जनयति रुजः कण्टकभवाः।।११३।।

(मालिनी छन्द)

रजनि-लवण-तैल-क्षुद्रसिद्धार्थपङ्क-
स्थितिवशकनकश्रीहारिषु स्वादवत्सु।
भवति मतिरुदश्विद्धोजने पुण्यभाजां
धृतबलिषु विपाके राजशेल्वाः फलेषु।।११४।।

(अनुष्टुप् छन्द)

तैलसैन्धव-जम्बीर-रसमध्ये परिप्लुता।
कियद्भिरेव दिवसैः रुच्या मरिचमञ्जरी।। ११५।।

(वियोगिनी छन्द)

नवसैन्धव-तैल-राजिका-रजनी-कल्ककृताधिवासिनः।
रुचिमत्त्वमुपैति भोजने सहकाराङ्कुरकोत्करस्तदा।।११६।।

(वसन्ततिलका छन्द)

पीतानि भूरिरसवन्ति महोदराणि
जम्बीरपल्लव-विमर्दित-सौरभाणि।
सिन्धूत्थ-तैल-परिपूरित-गह्वराणि
निम्बूफलानि जठरानलदीपनानि।।११७।।

(उपजाति छन्द)

विदार्य वृन्तं लवणेन पूरितं
पुनः पुनर्घर्मकरस्य गोचरे।
पतङ्गपाकेन चिरेण पाचितं
कौलं फलं दीपकमाशुशुक्षणेः।।११८।।

(वियोगिनी छन्द)

करमर्द्दकमाविलीकृतं रजनी-निर्मलतैल-सैन्धवैः।
अचिरेण करोति रोचनं यदि युक्त्या मथितेन युज्यते।।११९।।

(वसन्ततिलका छन्द १२०-१२१)

आम्रातकं लवण-तैल-निशापरीतं
स्तोकासुरी-सुरभितं पिहितं प्रयत्नात्।
उद्घाटितं खलु गते सति मासमात्रे
सौरभ्यतो रसन-संवननं परं तत्।।१२०।।

यत्नेन कुण्डलितमाकुलितं नितान्तं
सिन्धूत्थ-दन्तशठ-तैल-निशारजोभिः।
अन्तर्निवेशित-दलीकृत-शृङ्गवेरं
वाचंयमद्रुमफलं रुचिमातनोति।।१२१।।

(तोटक छन्द)

नव-सैन्धव-दन्तशठैरवशी-
कृततैलनिशारजसा कपिशा।
सहकारतरोः कुसमस्तबकाः
रुचिमातनुते भुजिमाचरताम्।।१२२।।

(वियोगिनी छन्द १२३-१२५)

तिलतैल-निशासुरीरजो-लवणैरञ्जितमन्तरान्तरा।
विनिहन्तितरामरोचकं सहकारस्य फलं पचेलिमम्।।१२३।।

वरसैन्धव-राजिकारजः-सलिलैः कर्द्दमितं घटोदरे।
अदतां हि धिनोति मानसं फलमामं सहकारभूरुहः।।१२४।।

जलसैन्धवमात्रसाधितं लघु माकन्दफलं मनोहरम्।
अतिरोचकमश्नतो भवेत् सहकार्यन्तरसारसौरभम्।।१२५।।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

संख्यातीताः कति कति न ते शाकपाकप्रभेदाः
किन्तैरुक्तैरहितविरसै रत्नगर्भापतीनाम्।
मूलं पत्रं कुसुममथवा पल्लवं वा फलं वा
युक्त्या राद्धं भवति चतुरैः सर्वमेवातिरुच्यम्।।१२६।।

(स्रग्धरा छन्द)

काले धाराधराणां निवसनविधृतव्योमवारिप्रपूर्णान्
कुम्भानम्भोजखण्डद्युतिमति सरसि प्रक्षिपेन्मुद्रितास्यान्।
तेषामाकृष्टमम्भः प्रतिदिनममलं न्यस्तकर्पूरसारं
भोज्यान्ते पीतमात्रं जरयति सकलाहारमायुः करोति।।१२७।।

(वसन्ततिलका छन्द)

कृष्णागरु-प्रतनु-कल्ककषायमन्तः-
कर्पूरसाररजसा च सनाथमुच्चैः।
आराधित-त्रिपुरवैरि-पदाम्बुजानां
भोज्यावसान-करमर्द्दनचन्दनं स्यात्।।१२८।।

(मालिनी छन्द)

अगरु-मलयभूभृद्दारु-कर्पूरसार-
प्रथितमृगमदांशैः साधितां धूमवर्त्तिम्।
अनुभवति स नित्यं भोजनान्ते दुरापां
क्षितिधरपतिकन्या यस्य वश्या नरस्य।।१२९।।

(आर्या छन्द)

कदलीकुट-कोटर-विगलित-सौरभ्यभाजनं तारम्।
निःस्नेहं मुनिमानसमिव कर्पूरं तदादेयम्।।१३०।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

आवर्त्तप्रभलोहितोदरपटी पीयूषधाराधरा-
जिह्वामूल-कपोल-तालुमृदुला स्वाङ्गोल्लसत्सौरभा।
तस्येयं मधुरा प्रयाति वदनं पौगीफलीफालिका
यो जायेत महेश्वरांघ्रिकमले भृङ्गायमाणो नरः।।१३१।।

(मालिनी छन्द)

शुक-पतग-पुरन्ध्री-गण्डपाण्डूनि चञ्चत्-
कनक-करक-नालोद्धारयत्लोचितानि।
त इह खलु लभन्ते नागवल्लीदलानि
त्रिपुररिपु-पदाग्रे ये तु कम्रा विनम्राः।।१३२।।

(उपजाति छन्द)

शैलोदरग्रावविशेषचूर्णं श्रीवासतोयं घनसारपूर्णम्।
ताम्बूलरागोदयजागरूकं निरन्तरं पाचनजागरूकम्।।१३३।।

(वसन्ततिलका छन्द)

कर्पूरसार-मलयद्रु-कुरङ्गनाभि-
सम्मर्दितं खदिरभूरुहसारचूर्णम्।
यत्नेन केसरतरुप्रसवावृतं तत्
ताम्बूलरोचककरं धरणीपतीनाम्।।१३४।।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

स श्रीमान् स सुखी स भोजनरुचिः स प्राणिनां संश्रयः
स प्राप्नोति जगत्त्रयं च यशसा तस्यारयो नश्वराः।
तस्य श्रीर्वशतामुपैति स भवेत् क्षोणिभृतां वल्लभो
यत्कण्ठे लुठति स्फुटं रुचिवधूरत्नावलीयं सदा ।।१३५।।

(मालिनी छन्द)

इति परलकुलीशाचार्यवर्यानुजेन
द्विपभिदनुचरेण श्रीपरोङ्कारनाम्ना।
व्यरचि रुचि-चिरण्टी-कण्ठरत्नावलीयं
श्रवणपठनमात्रादङ्गिनां रोचकाय।।१३६।।

(अनुष्टुप् छन्द)

अत्र स्यात् पद्यसंख्येयं षट्त्रिंशदधिकं शतम्।
शतद्वयं त्रयस्त्रिंशदुत्तरं ग्रन्थसंख्यया।।१३७।।

इति परमपाशुपत-परलकुलीश्वरावरज-परप्रणव-विरचिता
रुचिवधू-गल-रत्नमाला

परिशिष्ट-.३

रुचिवधू-गल-रत्नमाला में प्रयुक्त छन्द

अनुष्टुप्- (१२) १७, १८, ३२, ३४, ५०, ५२, ५७, ७५, ७६, १०७, ११५, १३७;

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

(श्रुतबोध- १०)

आर्या- (५) २९, ५४, ९७, ९८, १३०;

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या।।

(श्रुतबोध- ४)

इन्द्रवज्रा- (१) ३९; स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

(वृत्तरत्नाकर- ३.२८)

उपेन्द्रवज्रा- (१) ४८; उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।

(वृत्तरत्नाकर- ३.२९)

उपजातिः- (१७) २१, ३०, ३३, ३४, ३७, ३८, ४२, ४७, ६१, ६९, ७४, ७८, ८८, १००, १०५, ११७, १३३;

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः। (वृत्तरत्नाकर- ३.३०)

तोटकम्- (१) १२२; इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्।

(वृत्तरत्नाकर- ३.४८)

पुष्पिताग्रा- (३) ४५, ६४, ९६; अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। (वृत्तरत्नाकर- ४.१०)

मन्दाक्रान्ता- (६) ७, ५८, ६६, ८७, ९९, १२६;

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्।

(वृत्तरत्नाकर- ३.९७)

मालिनी- (१६) १९, ४१, ४४, ४९, ६०, ७९, ८२, ८३, १०५, १०८, १०९, ११२, ११३, १२९, १३२, १३६;

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

(वृत्तरत्नाकर- ३.८७)

रथोद्धता- (१) ५६; रान्नराविह रथोद्धता लगौ।

(वृत्तरत्नाकर- ३.३८)

वसन्ततिलका- (४६) १-६, ८-१२, १४-१६, २४, २७, ३५, ४०, ४३, ४६, ५१, ५३, ५५, ५९, ६२, ६५, ६७, ७१-७३, ७७, ८०, ८४, ८५, ८६, ९०, ९२-९५, १०३, ११७, १२०, १२१, १२८, १३४;

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

(वृत्तरत्नाकर- ३.७९)

वियोगिनी- (८) २२, ३६, ८९, ११६, ११९, १२३, १२४, १२५;

विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।

शार्दूलविक्रीडितम्- (९) २३, २६, ६३, ८१, ९१, १०१,

१११, १३१, १३५;

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

(वृत्तरत्नाकर- ३.१०१)

शिखरिणी- (४) २८, ३१, ७०, ११३;

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

(वृत्तरत्नाकर- ३.९३)

स्रग्धरा- (५) १३, २०, २५, १०४, ११०;

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्।

(वृत्तरत्नाकर- ३.१०४)

स्वागता- (२) ६८, १०२; (स्वागतेति रनभाद् गुरुयुग्मम्)

(वृत्तरत्नाकर- ३.३९)

सकल पद्य संख्या-१३७;

।। इति रुचिवधू-गल-रत्नमाला-गत-छन्दोविवरणम्।।

परिशिष्ट-४

रुचिवधूगलरत्नमाला-चरणानुक्रमणिका

यहाँ रुचिवधू-गल-रत्नमाला के पद्यों के चारों चरणों की अकारादिक्रम से अनुक्रमणिका प्रस्तुत है। इसमें प्रत्येक पद्य के प्रथम चरण को गाढ अक्षरों में मुद्रित किया है।

।। इति रुचिवधू-गल-रत्नमालायाः चरणानुक्रमणिका ।।

परिशिष्ट-५

रुचिवधू-गल-रत्नमाला के क्षेमकुतूहल में उपलब्ध व अनुपलब्ध पद्यों का विवरण

रुचिवधू-गल-रत्नमाला में बहुसंख्य श्लोक प्राचीन पाकशास्त्रीय परम्परा से लिए गए हैं। इनमें से कुछ तो यथावत् लिए हैं तथा कुछ अल्प परिवर्तन के साथ। ये श्लोक प्राचीन पाकशास्त्रीय परम्परा के प्रतिनिधि ग्रन्थ 'क्षेमकुतूहल' (१७वीं शती ई. पूर्वार्द्ध) में भी उपलब्ध हैं। 'क्षेमकुतूहल' में इनमें से कुछ श्लोक यथावत् उपलब्ध हैं तथा कुछ थोड़े-से अन्तर के साथ। जो श्लोक 'क्षेमकुतूहल' में उपलब्ध हैं, उनका निर्देश पुस्तिका में पाद-टिप्पणियों के अन्तर्गत भी किया है। १३७ श्लोकों वाली इस पुस्तिका के जो श्लोक यथावत् अथवा किञ्चित् परिवर्तित रूप में 'क्षेमकुतूहल' में उपलब्ध नहीं हैं, उनकी संख्या को यहाँ अधोरेखांकित रूप में दिखाया जा रहा है-

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७;

(क्षेमकुतूहल में उपलब्ध-८४, अनुपलब्ध-५३, ८४+५३=१३७)

परिशिष्ट-६

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

अजीर्णामृतमञ्जरी- आचार्य बालकृष्ण, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, प्रथम संस्करण-२०१३ ई.

अनेकार्थसंग्रह कोश- हेमचन्द्राचार्य, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-१, द्वितीय संस्करण- सं. २०२६ वि.

अभिधानचिन्तामणि (स्वोपज्ञ टीका सहित)- हेमचन्द्राचार्य, जैन साहित्यवर्धक सभा, अहमदाबाद, (गुजरात), सं. २०३२ वि.

अष्टाङ्गहृदयम्- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-१, पुनर्मुद्रण- वि.सं. २०६७;

आयुर्वेद-महोदधिः (सुषेण-निघण्टुः)- आचार्य बालकृष्ण, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, प्रथम संस्करण- २०१३ ई.

काश्यपसंहिता- सत्यपाल भिषगाचार्य, चौखम्भा संस्कृत संस्थान,वाराणसी-१, सं. २०१० वि.

कैयदेव-निघण्टु- सम्पादक-आचार्य प्रियव्रत शर्मा, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी-१, २००९ ई.

क्षेमकुतूहलम्- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुम्बई, प्रथम संस्करण-१९२०ई.

चरकसंहिता- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्भा ओरियण्टालिया, बंगलो रोड़, ९-यू.बी. जवाहर नगर, दिल्ली-७, प्रथम संस्करण-२००४ई.

द्रव्यरत्नाकर-निघण्टु- सम्पादक- वैद्य एस.डी.कामत, 'प्रसाद' प्रथम तल, सरोजिनी नायडु रोड, मुलुण्ड (पश्चिम) मुम्बई-४०००८०;

नीतिवाक्यामृतम्- भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, ३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६, १९७१ ई.

भावप्रकाश-निघण्टु- श्री वेङ्कटेश्वर मुद्रण यन्त्रालय मुम्बई, सं. १९७२ वि.

भावप्रकाश (उत्तरार्द्ध)- पं०लालचन्द्र वैद्य, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७, तृतीय संस्करण- १९७०ई.

माधवनिदानम्- सम्पादक- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई।

भोजनकुतूहलम्- (रघुनाथसूरि-विरचितम्) आचार्य बालकृष्ण, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, प्रथम संस्करण-२०१३ ई.

वृतरत्नाकरः- (केदारभट्ट-विरचितः), काशिनाथ पाण्डुरङ्ग परब, निर्णयसागर मुद्रणालय मुम्बई, १८९०ई.

शिवतत्त्वरत्नाकर (तृतीय सम्पुट)- प्राच्यविद्या संशोधनालय, मैसूर, १९८५ ई.

श्रीमद्भगवद्गीता- गीताप्रेस गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)।

सुश्रुतसंहिता- सम्पादक - त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-१; २०१२ ई.

सौन्दरनन्दम्- (अश्वघोष-विरचितम्), सम्पादक- सूर्यनारायण चौधरी, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, बंगलो रोड, दिल्ली-७, पुनर्मुद्रण-१९८६ ई.

....

शब्दसंक्षेप-सूची

अ.हृ.चि.-	अष्टाङ्गहृदय, चिकित्सा-स्थान
क्षेम.-	क्षेमकुतूहलम्
च.सं.चि.-	चरक-संहिता, चिकित्सा-स्थान
च.सं.सू.-	चरक-संहिता, सूत्र-स्थान
भा.प्र.नि.-	भावप्रकाश-निघण्टु
भा.प्र.म.ख.-	भावप्रकाश, मध्यम खण्ड
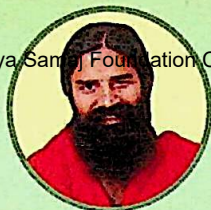
रुचिवधू-गल-रत्नमाला

रुचिवधू-गल-रत्नमाला आयुर्वेद एवं पाकशास्त्र से सम्बद्ध एक प्राचीन रचना है। इसमें विविध प्रकार के ऐसे निरामिष (शाकाहारी) सात्त्विक व्यंजनों का काव्यमय शैली में वर्णन है, जो अरुचि व मन्दाग्नि को दूर कर विशेष रूप से स्वास्थ्य-वर्द्धक होते हैं। प्राचीन काल में मूलतः संस्कृत में लिखी गई तथा अब तक अप्रकाशित इस पुस्तिका को आयुर्वेद-मनीषी श्रद्धेय आचार्य श्रीबालकृष्ण जी ने सुसम्पादित रूप में पहली बार सरल हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया है। यह रुचिकर एवं सुपाच्य भोजन की जानकारी के लिए पठनीय रचना है।

आचार्यश्री ने इसकी भूमिका के अनन्तरवर्ती भाग में चरकसंहिता आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों के आधार पर भोजन के प्रति होने वाली अरुचि (अरोचक रोग) के कारणों का विवरण प्रस्तुत करते हुए इसके निवारण हेतु सरल चिकित्सा का वर्णन किया है। इसी प्रसंग में स्वास्थ्य के लिए स्वर्णिम सूत्र **मिताहार** का विवेचन करते हुए चरक-संहिता के आधार पर **आहार-मात्रा** के विषय में बहुत ही उपयोगी एवं मार्मिक जानकारी दी है, जो प्रत्येक आरोग्याभिलाषी व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

हमारा स्वास्थ्य मुख्यतः समुचित भूख लगने व सन्तुलित आहार लेने पर निर्भर है। कहा भी है- **सारमेतच्चिकित्साया यदग्नेः परिपालनम्,** अर्थात् जठराग्नि (भूख) को सन्तुलित बनाए रखना ही चिकित्सा का सार है। प्रस्तुत पुस्तिका अरुचि व मन्दाग्नि को दूर कर क्षुधा जागृत करने वाले उत्तमोत्तम स्वादु व्यंजनों की जानकारी देकर आरोग्यलाभ में सहायक सिद्ध होगी। अतः स्वाध्यायशील पाठक इस पुस्तिका का अध्ययन कर अवश्य लाभान्वित होवें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सभी के सुखमय आरोग्य की मंगल कामना के साथ।

आपका–
स्वामी रामदेव

₹ 110/-

ISBN 81-89235-94-X
8904049800094

दिव्य प्रकाशन
दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट
महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग
निकट बहादराबाद, उत्तराखण्ड

Printed at : mpprinters Noida 201 305